ॐ जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यः ॐ

अविर्भाव—बसन्तपञ्चमी संवत् १५०३ वि० श्रीरामानन्दाब्द १४७

तिरोभाव—श्रीरामनवमी १६११ वि० श्रीरामानन्दाब्द २५५

जन्मस्थल—काशी द्वारपीठस्थल—श्री बालानन्दमठ जयपुर

पिता—श्री यज्ञनिधि शर्माजी माता—श्रीदेवीजी

गुरु—जगद्गुरु श्री भावानन्दाचार्यजी

प्रबन्ध (१) गीतार्थसुधा (२) श्रौतार्थसंग्रहः (३) रामचन्द्रत्रिंशति (४) मंगलद्वादशी (५) श्रीभवानन्दमंगलम् आदि ।

जगद्गुरोः श्रीमदनुभवानन्दाचार्यस्य जन्मसरयूपारीणविप्रवंशे वाराणस्यां वसन्तपञ्चम्यां त्र्याधिकपञ्चसतोत्तरसहस्रमिते १५०३ वैक्रमाब्देऽभवत् । अस्य मातुर्नाम श्री मती श्रीदेबी पितुश्च श्रीयज्ञनिधिशर्मात्रिपाठी वर्ततेस्म । जन्मनामास्याऽनूपशर्मा, सम्प्रदायमनुसृत्यायमत्रिऋषेरवतार आसीत् । वैदिक ऋक्षु कर्मकाण्डेनुरागात् शैशवे यज्ञोपवितसंस्कारोऽस्यकृतः । नित्याग्निहोत्रविधानाद् यज्ञनिधि-

जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी का जन्म सरयू पारीण ब्राह्मण वंश में वाराणसी में १५०३ एक हजार पाँच सौ तीन विक्रम सम्बत में वसन्त पञ्चमी के दिन हुआ इनकी माता का नाम श्रीमतिदेवी एवं पिता का नाम श्री यज्ञनिधि शर्मा त्रिपाठी था। इनका जन्म नाम अनूपनिधि शर्मा था । सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार ये अत्रि ऋषि के अवतार थे। वैदिक ऋचाओं एवं कर्मकाण्ड में प्रेमके कारण बाल्यावस्था में ही उपनयन संस्कार किया गया । प्रतिदिन अग्नि में इनका हवन करने के कारण ये

नाग्निहोत्रीकथ्यते स्मायम् । बाल्यादेवास्य भक्तिलिप्सा-सीत् । अष्टादशवर्षदेशीयोऽयं सांख्यन्यायवैशेषिक व्याक-रणशास्त्राणां चतुर्णां सम्यग् ज्ञानमकरोत् । भगवतः श्रीरामानन्दाचार्यादेव श्रीमठे दीक्षान्तभाषणं श्रुतवान् । तदैवास्य सम्प्रदायानुरागो धर्मरक्षा भावना जागरणञ्चा-भूत । काश्यां गंगापातेन प्राणविसर्जकं युवानमावोक्य विरक्तो गृहे एव आसक्तिरहितं जीवनं यापयतिस्म । सन्यासाय जननी जनकयोरनुमतिमासाद्य काशीतो गढ-मुक्तेश्वरं गतवान् । गार्हस्थ्य जीवन श्रेष्ठता गुरुणा प्रति-

यज्ञनिधि शर्मा के द्वारा अग्नि होत्रि नाम से पुकारे जाते थे। लडकपन सेही इनकी श्रीरामभक्ति में अभिलासा थी। लगभग १८ बर्ष की अवस्था के थे तभी ये सांख्य न्याय वैशेषिक शास्त्रोंका तथा चारों वेदों का सम्यक् ज्ञान कर लिये थे। भगवान् श्री रामानन्दाचार्यजी से ही ये श्री मठ में दीक्षान्त भाषण सुने थे। उसी समय इनको सम्प्रदाय के प्रति अनुराग एवं धर्मरक्षा की भावना का जागरण हुआ था। काशी में किसी ब्राह्मण युवक के गङ्गाजी में गिरकर प्राण त्याग को देखकर वैराग्य युक्तहोकर घर में ही आसक्ति रहित होकर जीवन यापन करते थे। पुनः सन्यास ग्रहण के लिये माता पिता से अनुमति प्राप्तकर काशीसे चलकर गढमुक्तेश्वर गये। गृहस्थ जीवन की श्रेष्ठता जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी के द्वारा बताये जानेपर भी दृढ़ वैराग्य होने

पादितेऽतिदृढवैराग्यवशाद् विरक्तौ निष्ठां दाढर्येन निवेद्या-
ष्टाविंशत्यधिपञ्चशतोत्त्तरसहस्रमिते १५२८ वैक्रमाब्दे
वसंतपञ्चम्यां जगद् गुरुणा श्रीमता भावानन्दाचार्येण
सपञ्चसंस्कारं दीक्षितः । गुरौ श्रीसाकेतमुपगतेऽनुभवा-
नन्दाचार्यो गढमुक्तेश्वरं प्रययौ । स्वकनीयांसंगुरुभ्रातरं
श्रीहनुमदाचार्यं तत्र पीठेस्थापयित्वा हरिद्वारमुपगम्य कनखले
स्वगुरुणा स्थापिते श्रीहनुमन्मन्दिरे पदार्पणमकरोत् । ततो
भारतीयेषु समेषु तीर्थेषु यात्रां कृत्वा शास्त्रार्थेषु च
विजयमासाद्य दशनामिशैवविरोधाय श्रीवैष्णवसैन्यसंग्रहम-

के कारण वैराग्य के प्रति निष्ठा दृढता पूर्वक निवेदन करके
१५२८ एक हजार पाँच सौ अट्ठाईस विक्रम सम्बत् में वसन्त
पञ्चमी के दिन जगद्गुरु श्रीमान् भावानन्दाचार्यजी से पञ्चसंस्कार
विधान पूर्वक दीक्षित हुए अनन्तर श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी धर्म
प्रचार यात्रा में थे तब गुरुदेव के एकाएक साकेतलोक प्रस्थान
कर लेने पर गढमुक्तेश्वर गये । अपने छोटे गुरुभाई श्रीहनुम-
दाचार्यजी को वहां रखकर हरिद्वार पहुंचकर कनखल में अपने
गुरु के द्वारा स्थापित श्रीहनुमान् मन्दिर में पादार्पण किये ।
अनन्तर भारत बर्ष के सभी तीर्थों में यात्रा करके और शास्त्रार्थ
में विजय पाकर दशनामी शैव का सर्वकालिक विरोध शमन करने
के लिये श्रीवैष्णव सेनाका संगठन किये । गुजरात में प्रवेशका
प्रतिबन्ध भङ्ग के लिये निश्चयपूर्वक धोलका और धन्धुका के

करोत् । गुर्जरप्रदेशप्रतिवन्धभङ्गाय निश्चयेन धोलकाधन्धुकयोर्विजयमकरोत् । भालप्रदेशे श्रीवैष्णवसिद्धान्त श्रीराम भक्तेश्च प्रचारं विधाय गिरिनारे सामूहियशास्त्रार्थे विजय मासादिवान् । अनन्तरं द्वारका विश्रामद्वारकादिदर्शनं विधाय वीरमग्रामेतान्त्रिकशक्ते परिचयं प्रदाय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य भाषणस्थले सिद्धपुरे वेदान्तस्तम्भनिर्माणसंकल्पमकरोत् । अर्बुदाचलपुण्यक्षेत्रो वाममार्गिवर्गं समयित्वा जयपुरे श्रीराममन्दिरं निर्मापयित्वा न्यवसत् । तदेव कालान्तरे द्वारपीठतया प्रसिद्धोऽभवत् । मीरिणे श्रीसाकेतवासोऽस्य जातः श्रीरामनवम्यां १६११ वैक्रमाब्दे २५५ श्रीरामानन्दाब्दे ।

संघर्ष में विजय प्राप्त किये । भालप्रदेश में श्रीवैष्णव सिद्धान्त एवं श्रीराममक्ति का प्रचार करके गिरनार में सामुहिक शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त किये । वहां से द्वारका विश्रामद्वारका प्रभृति तीर्थों का दर्शन करते हुये वापसी में वीरमगाव में तान्त्रिक सामार्थ्य का परिचय देकर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य के भाषण स्थल पर सिद्धपुर में वेदान्त स्तम्भ निर्माण का संङ्कल्प किया । अर्बुदाचल एवं पुष्कर राज में वाम मार्गियों के उपद्रव को शान्तकर जयपुर जाकर श्रीरामजी मन्दिरका निर्माण राजपरिवारों से करवा कर वही निवास किये । आगे चलकर वही स्थान द्वारपीठ के रूप में प्रसिद्ध हुआ । विक्रम सं० १६११ श्रीरामानन्दाब्द २५५ श्रीरामनवमी के दिन आपका श्रीसाकेतवास हुआ ।

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

जगद्गुरुश्रीअनुभवानन्दाचार्यप्रणीतः

श्रौतार्थ सङ्ग्रहः

वन्दे सीतापतिं सीतां मारुतिं च महामतिम् ।
आनन्दभाष्यकृद्रामानन्दाचार्ययतीश्वरम् ॥१॥

सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमो नमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

श्रीरामं सच्चिदानन्दं कार्यकारणरूपिणम् ।
श्रीसीताऽभिन्नरूपं तं प्रणमामि गुणाकरम् ॥१॥
वन्दे श्रीभाष्यकर्तारं जगदानन्दकारकम् ।
द्वाराचार्यौ च तौ नौमि संसारभयनाशकौ ॥२॥

मानव का चरम लक्ष्य वेद प्रतिपाद्य सर्वेश्वर श्रीरामजी का कैंकर्य प्राप्तिरूप सायुज्य मुक्ति है। वेद में अल्प श्रुतों को आपातत परस्पर विरोधसा अनुभव होने से वेद समन्वयात्मक ब्रह्मसूत्रों की रचना श्रीसम्प्रदाय के ७ वें आचार्य बादरायण श्री व्यासजी ने त्रेतायुग में की। कलियुगी मानवों को उन सूत्रों के वास्तविक अर्थ बोध करने में अक्षमतानुभव कर श्रीसम्प्रदाय के ९ वें आचार्य बोधायन महर्षि श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी (विक्रम पूर्व

नत्वाऽहं स्वगुरुं भावानन्दाचार्यं जगद्गुरुम् ।
श्रौततत्त्वावबोधाय कुर्वे श्रौतार्थसङ्ग्रहम् ॥२॥

५६९-३२०) ने ब्रह्मसूत्र के वास्तविक तत्त्व प्रकाशक विशिष्टा-द्वैत तत्त्व प्रस्फोरण परक विस्तृत वृत्ति (बोघायनवृत्ति) लिखी। उसी वृत्ति के भित्ती में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज (१३५६-१५३२ विक्रम) ने श्रीआनन्दभाष्य की रचना की। उस भाष्य के तत्त्वों को सरलतया बोघ हेतु आचार्य श्री के प्रशिष्य यानी जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी (विक्रम सम्बत १३७६-१५३९) के शिष्य जगद्गुरु श्रीअनुभवानादचार्यजी (विक्रमसम्बत १५०३—१६११) ने इस श्रौतार्थ सङ्ग्रह नामक संग्राहात्मक प्रबन्ध का प्रणयन किया। उसके निर्विघ्न परिसमाप्ति एवं अध्येताओं की मंगल कामना से शास्त्र बोधित मङ्गलाचरण करते हैं "वन्दे सीतापतिम्" इत्यादि से-

मैं सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के पति सर्वेश्वर श्रीरामजी तथा सर्वेश्वरी श्रीसोताजी एवं महाबुद्धिवाले श्रीहनुमान्जी और यतीश्वर श्रीआन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी को सादर वन्दन सादर दण्डवत प्रणाम करता हूं ॥१॥

मैं अपने दीक्षा शिक्षा गुरुदेव जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी को सादर नमस्कार दण्डवत प्रणाम करके श्रौत्र-श्रुति में वर्णित तत्त्वों के संग्रह संक्षेप रूप से वास्तविक बोधकराने हेतु 'श्रौत्रार्थ संग्रह' नामक ग्रन्थ को बनाता हूं ॥२॥

परमाचार्यवर्यं तं रघुवरार्यं सद्गुरुम् ।
पारगं सर्वशास्त्राणां श्रीरामतत्त्व बोधकम् ॥३॥
नत्वा श्रीजगदाचार्यं योगीन्द्रं ज्ञानवारिधिम् ।
श्रौततत्त्वावबोधाय श्रौतार्थसंग्रहे मुदा ॥४॥
टीकां कुर्वेऽति संक्षिप्तां वेदान्तार्थ प्रकाशिनीम् ।
जनभाषां समाश्रित्य सीतारामप्रचोदितः ॥५॥

पूर्व भाग कर्मकाण्ड प्रतिपादन परक पूर्व मीमांसा तथा अपर भाग ज्ञानोपासना प्रतिपादन परक उत्तर ब्रह्ममीमांसा रूप से दो भागों में विभक्त सम्पूर्ण वेद राशि साक्षात् या परम्परा से जिस पद प्राप्य स्वरूप परतत्त्व का बोध कराती हैं, इस कठोपनिषद् एवं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुतियों से बोधित सत्य अनन्त एवं आनन्द स्वरूप श्रीराघवजी में धारणा ध्यान एवं समाधि के द्वारा साधक योगिजन रमण करते हैं अतः 'राम' इस पदसे दसरथनन्दन पर ब्रह्म श्रीराम कहे जाते हैं।, इस श्रीरामतापनीयोपनिषद् आदि श्रुतियों के प्रणाम से परब्रह्म पद से कथित सर्वेश्वर श्रीरामजी ही श्रुतियों से प्रतिपादित मुख्य तत्त्व हैं अन्य नहीं ॥३॥

मुमुक्षु मुक्ति की इच्छा वाले साधकों को सायुज्य मुक्ति प्राप्ति के लिये सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के ही ज्ञानका सम्पादन करना चाहिये क्योंकि महापुरुष पद से कथित पर ब्रह्म श्रीरामजी को जानकर के ही यानी उनकी उपासना करके ही मृत्यु पद से कथितसंसार को अतिक्रमण-तर जाता है सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" (क०१।२।१५) "इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते" (श्रीरामतापनीयोपनिषद्) इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् परब्रह्मपदाभिधेयः सर्वेश्वरः श्रीराम एव मुख्यं श्रौतं तत्त्वम् ॥३॥

मोक्षावाप्त्यर्थं तज्ज्ञानमेव मुमुक्षुभिः सम्पादनीयम् "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" (श्वे० ३।८) इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् ॥४॥

के प्राप्ति के लिए यानी सायुज्य मुक्ति रूप परमपद श्रीसाकेत दिव्यधाम की प्राप्ति के लिये दूसरा मार्ग नहीं है, इस श्वेताश्वतर श्रुति के प्रमाण से एवं "त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः। त्वमेवतारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किञ्चन" (सनत्कुमार संहितास्थ श्रीरामस्तव राज ७५) हे श्रीरामजी आप के सबके नियन्ता एवं सबके आधार होने के कारण आपका कभी भी क्षरण नहीं होता है एवं परम ज्योति स्वरूप पुरुषोत्तम भी आप ही हैं तथा तारक ब्रह्म भी आप ही हैं अतः संसार में आप से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है यानी अभिन्न निमित्तोपादान तथा कार्य कारण रूप से श्रीरामजी ही सर्वत्र व्याप्त हैं अतः वे ही साधकों को संसार से उद्धार करते हैं अन्य नहीं। तथा "रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निः श्रेयसम्" (श्रीबोधायनपञ्चक) सभी श्रुतियों से अनुमोदित परब्रह्म श्रीरामजी ही हैं श्रीरामजी की अनन्य भक्ति से ही सायुज्य मुक्ति होती है, आदि स्मृतियों के प्रमाण से सिद्ध होता है कि श्रीरामचन्द्रजी विषयक तत्त्व ज्ञान के बिना सायुज्य मुक्ति नहीं होती है ॥४॥

स च भगवांश्छ्रीरामः सर्वदा चिदचिद्विशिष्ट एवावतिष्ठते। तथाचाहुराचार्यसार्वभौमाः श्रीराघवानन्दाचार्याः श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमालायाम्-

"चिदचिद्भ्यां विशिष्टाय शिष्टपक्षसुरक्षिणे।
सच्चिदानन्दरूपाय राघवेन्द्राय मङ्गलम् ॥८॥ इति ॥५॥

वेदरहस्यमार्तण्डभाष्येऽप्युक्तं- "बोधायनवृत्तिकारभगवत्पुरुषोत्तमाचार्य बोधायनप्रशिष्यैराचार्यचक्रचूडामणिभिः श्रीसदानन्दाचार्यैरप्युक्तं वेदान्तसारस्तवे-

सर्वजीव प्राप्य षडैश्वर्यशाली वे श्रीरामजी सर्वदा चित् चेतन जीव तत्त्व एवं अचित् जड प्रकृति तत्त्वों से विशिष्ट युक्त ही रहते हैं यानी श्रीरामचन्द्रजी विशेष्य हैं चित् जीव तथा अचित् प्रकृति विशेषण ये दोनों ही विशेषण अपृथक् सिद्ध अर्थात् अलग न होने वाले हैं इसलिये श्रीरामजी सदा विशेषणों से युक्त ही रहते हैं। इस तत्त्व को आचार्य सार्वभौम जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी (१२०६-१३९६ विक्रम सम्वत्) ने श्रीराघवेन्द्र मङ्गलमालायें निम्नरूप से कहा है -चित् एवं अचित् से विशिष्ट तथा शिष्टजनों के पक्ष की सुरक्षाकरने वाले और सद् चित् एवं आनन्द स्वरूप श्रीराघवेन्द्रजी का सदा मंगल हो ॥५॥

श्रीरामचन्द्रजी चिदचिद्विशिष्ट ही रहते है ऐसा वेदरहस्यमार्तण्ड भाष्य में भी कहा है बोधायन वृत्तिकार भगवान श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन के प्रशिष्य जगद्गुरु श्रीगंगाधराचार्यजी (विक्रम पूर्व ४८९-२८९) के शिष्य आचार्य चक्र चूडामणि

"चिताऽचिता विशिष्टाभ्य सूक्ष्मयाऽसूक्ष्मयाथ च ।
कार्यकारणरूपाय श्रीरामाय नमो नमः ॥२॥" इति ॥६॥

चिदचितोः श्रीरामस्य विशेषणत्वं तु "य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति स त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः" "यः पृथिव्यांतिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः" (बृहदारण्यकोपनिषद् ३।७।३) इत्यादिश्रुतिनिचयप्रतिपादिततच्छरीरत्वादेव ॥७॥

जगद्गुरु श्रीसदानन्दाचार्यजी (३३७-८० विक्रमपूर्व) ने भी वेदान्त सारस्तव में कहा है सूक्ष्म चित् एवं सूक्ष्म अचित् तथा स्थूल चित् एवं स्थूल अचित् में विशिष्ट होनेसे कार्य एवं कारण यानी नाम एवं रूप के बिभाग के अयोग्य सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट कारण रूप से रहनेबाले तथा नाम एवं रूपके योग्य स्थूल चित् एवं अचित् रूप कार्य रूप से रहने वाले श्रीरामजी को वार वार नमस्कार है ॥६॥

चित् एवं अचित् तत्त्व श्रीरामचन्द्रजी के विशेषण हैं इसमें जो आत्मा में रहते हुये भी आत्मा से अलग है जिसे आत्मा नहीं जानती हैं जिसका आत्मा शरीर हैं जो आत्मा से अलग रहकर उसका नियन्त्रण करता है वह तुम्हारी अमृत रूपा अन्तर्यामी आत्मा है । एवं जो पृथिवी में रहते हुये भी पृथिवी से भिन्न है जिसे पृथिवी नहीं जानती है, जिसका पृथिवी ही

निगदितं चैतदुपेयोपायदर्पणे जगद्गुरुभिः श्रीश्रुतानन्दाचार्यैः "ईशस्य देहरूपत्वात् प्रकारौ कथितावुभौ । उभाभ्यां च विशिष्टो हि सर्वेशो रघुनायकः (७७)इति । सिद्धान्तविजयिभिः श्रीश्रियानन्दाचार्यैरप्युदितं प्रमिताक्षरासारे "तनुत्वेन श्रुतो जीवो ब्रह्मणो हि विशेषणम्" (२।३।२२) "तनुत्वात् तत् प्रकारत्वेनाचितो ब्रह्मणोंऽशता" (३।२।९) इति ॥८॥

शरीर है जो पृथिवी से अलग है एवं उसका नियमन करता है यही अमृत स्वरूपा अन्तर्यामी तुम्हारी आत्मा है, इत्यादि श्रुति समूह से प्रतिपादित श्रीरामजी के शरीर स्वरूप होने से ही है निस्प्रमाण नहीं ॥७॥

जगद्गुरु श्री श्रुतानन्दाचार्यजी (६३६–८३६)ने भी अपने प्रबन्ध उपेयोपापदर्पण में इसी बात को कही है—ईश सर्वेश्वर श्रीरामजी के देह रूप होने से चित् एवं अचित् दोनो ही विशेषण कहे गये हैं अतः सर्वेश्वर श्रीरघुनाथजी चित् एवं अचित् दोनो से विशिष्ट युक्त ही रहते हैं निर्विशेष नहीं । इसी तत्व को सिद्धान्त विजयी श्रीश्रियानन्दाचार्यजी (१०३६-१२०६) ने भी प्रमिताक्षरासार नामक अपने प्रबन्ध में निम्न रूप से कहा है—ईश्वर के शरीररूप से श्रुत वर्णित जीवात्मा ब्रह्म श्रीरामजी का विशेषण है । ईश्वर के शरीर होने से जीव या प्रकृति ब्रह्म श्रीरामजी के विशेषणरूप से ब्रह्म के अंश रूप से व्यवहृत हैं ॥८॥

भगवद्रामानन्दाचार्य आचार्यसार्वभौमोऽप्याह-"चिदचिद्वस्तुशरीरतया तत्प्रकारं ब्रह्मैव सर्वदा सर्वशब्दाभिधेयम् (आनन्दभाष्यम् २।१।१४) ॥९॥

शरीरंतु चेतनं प्रत्याधेयं विधेयं शेषभूतं चापृथक्सिद्धं द्रव्यम् । तथाहि भाष्यम्- "प्राणशरीरः" सर्वेषां प्राणानां धारकः "यस्य प्राणः शरीरम्" इतिश्रुत्या प्राणस्य शरीरत्वनिर्देशादाधेयत्व विधेयत्वाङ्गत्वादयस्तस्मिन् फलन्ति । लोकेऽपि शरीरपदेनाधेयत्वादय एव गृह्यन्त इति तान्येव शरीरपदबोध्यानीति" (आनन्दभाष्यम् १।२।२) इति॥१०॥

आनन्दभाष्यकार आचार्य सार्वभौम भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी (१३५६-१५३२) ने आनन्दभाष्य में कहा है-इस प्रकरण का तत्त्व यह है कि चित् एवं अचित् वस्तु शरीर होने से चित् तथा अचित् वस्तु प्रकारक-चित् जीव एवं अचित् प्रकृति विशेषण वाला ब्रह्म ही सर्वदा "सदेव सौम्य" आदि श्रुति बोधित सर्वशब्द का वाच्य है अन्य नहीं ॥९॥

चेतन वस्तु के प्रति जो आधेय हो शेष रूप हो एवं अपृथक् सिद्ध द्रव्य हो उसे शरीर कहते हैं । भाष्यकारजी ने भी ऐसा ही कहा है १।२।२ सूत्र के भाष्य में-प्राण शरीर प्राण है शरीर अंग जिनका उनको प्राण शरीरक कहते हैं अर्थात प्राण का धारक क्योंकि 'यस्य प्राणः शरीरम जिसका प्राण शरीर है, इस श्रुति से प्राण में परम पुरुष के शरीरत्व का निर्देश होने से

एतेन चिदचिदीश्वरश्चेति त्रय एव श्रौताः पदार्था इत्युक्तं भवति । तथा हि श्रुतिः "क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः" (श्वे० १।१०) इति ॥११॥

प्राण में शरीरत्व विधेयत्व एवं अंगत्व फलित होता है । लोक में भी शरीर पद से आधेयत्व विधेयत्व तथा अंगत्व का ही ग्रहण होता है, इसलिये प्राणादिक ही शरीर पद से बोध्य होते हैं यह निश्चित है ॥१०॥

इस पूर्व वर्णित क्रमसे चित्-जीव अचित्-प्रकृति एवं ईश्वर ये तीन ही श्रुति प्रति पादित पदार्थ हैं ऐसा निश्चत रूप से कह सकते हैं यानी श्रुतिनिरूपि चित् अचित् तथा ईश्वर ये तीन तत्त्व हैं । इन तत्त्वत्रयों के प्रतिपादिका निम्न श्रुति है—प्रधानम् प्रकृति शब्द ते व्यवहार में प्रयुक्त तत्त्व जो है वह क्षरम् परिणाम परिवर्तनशील है, हरः—भोग्य पदार्थों को अपने भोग के हेतु आहरण करने वाले को हर कहते हैं अतः हर शब्द से बोध्य जीवात्मा ही यहां अमृत एवं अक्षर पद से वाच्य बोध्य है, एक अद्वितीय स्वरूप से स्थित देवः सर्वाराध्य सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी "भवान्नारायणो देवः" इस ब्रह्माजी के वाक्य से देव शब्द श्रीरामजी में प्रयुक्त होता है यह सर्वशास्त्र सम्मत है क्षरात्मानौ क्षर प्रधान एवं आत्मा जीवात्मा को ईशते-नियन्त्रित यानी अन्तर्यामी रूपसे प्रवर्तित करता है, अतः चित् अचित् एवं ईश्वर ये तीन ही तत्त्व नियत हैं ॥११॥

उक्तं च सदाचार्यसुरेन्द्रैः श्रीराघवानन्दाचार्यैः श्रौत-तत्त्वसमुच्चये "भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्त्वा" (श्वे० १।१२) इत्यादिश्रुतिप्रामाण्याच्चिदचिदीश्वरश्चेति त्रीण्येव श्रौतानि तत्त्वानीति" इति ॥१२॥

॥ अथचिद्रूपार्थनिरूपणम् ॥

तत्र चित्पदवाच्यो जीवः । स चाणुचेतनः । विशेष-णानुक्तावीश्वरे विशेष्या नुक्तौ प्रकृतिकार्येऽतिव्याप्तिरत

श्री सम्प्रदाय के २१ वें आचार्य प्रवर श्रीराघवानन्दाचार्यजी (१२०६-१३९६) ने "श्रौत तत्त्व समुच्चय" नामक प्रबन्ध में इसी बात की पुष्टि परक लिखा है—भोक्ता भोग करने वाला चेतन जीव शरीरक भोग्यम् भोग्यभूत अचेतन प्रकृति शरीरक एवं प्रेरिता अन्तर्यामितया प्रेरणा करने वाला नित्य निरतिशय आनन्द एवं दिव्य गुणों के समूह आश्रय रूप सर्वेश्वर श्रीरामजी इन तीनों को मत्त्वा यथार्थ रूप से जानकर सायुज्य मुक्ति का भागी होता है, इत्याति श्रुति की प्रमाणता से चित् अचित् एवं ईश्वर ये तीन मात्र श्रौत श्रुति सम्मत तत्त्व हैं, अतः तत्त्वत्रय के ज्ञानार्जन के लिये सभी लोगों को प्रयत्न करना चाहिये ताकि मनुष्य देह का परम लक्ष्य रूप सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर कृत कृत्य हुआ जासके ।१२।

॥ चिद्रूपार्थनिरूपण ॥

पीछले प्रकरण में चित् अचित् एवं ईश्वर इन तीन तत्त्वों का स्थापन किया गया है उनमें से प्रथम तत्त्व चित् पद का

उभयोपादानम् । चेतनो नाम ज्ञानाश्रयो जानामीति प्रतीतेः "बोद्धा कर्त्ता" इति श्रुतेश्च ॥१३॥

वाच्य-चित् पदसे जीव बोधित होता है। वह जीव अणु एवं चेतन है। विशेषण यानी अणु ऐसा न कहें केवल चेतन कहें तो ईश्वर भी चेतन है लक्षण ईश्वर में भी चला जायगा अतः अति व्याप्त होगा, चेतन इस विशेष्य अंश का प्रयोग न करें केवल अणु शब्द का प्रयोग करें तो प्रकृति कार्य में लक्षण के जाने से अति याप्त होगा इसलिये अणु एवं चेतन दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है, ईश्वर चेतन है अणु नहीं प्रकृति अणु है चेतन नहीं अतः 'अणुत्वे सति चेतत्वम्' यह लक्षण दोनो में नहीं जाता है केवल जीवात्मा में ही स्थिर रहता है क्योंकि जीवात्मा में अणुत्व एवं चेतनत्व दोनो धर्म विद्यमान हैं। इस विषय की विशेष चर्चा मेरे अन्य प्रवन्ध श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर-प्रभा-किरण श्वेताश्वतरोपनिषद् श्रीरामानन्दभाष्य प्रकाश आदि में है अतः विशेषार्थी वहीं देखें। ज्ञान के आश्रय आधार को चेतन कहते है क्योंकि 'जानामि' जानता हूं ऐसी प्रतीति ज्ञान अवबोध होता है 'एवं श्रुतिमें जीव के लिये बोद्धा निश्चय कर्त्ता नियत रूप से जानने वाला एवं 'कर्त्ता' कर्तृत्वरूप धर्म वाला कार्य करने वाला इस प्रकार से उल्लेख मिलता है अतः जीवात्मा ज्ञान का आश्रय है यह निश्चित होता है ॥१३॥

"एष द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः" (प्रश्न ४।९) इति श्रुतिप्रामाण्याज्ज्ञानाश्रयोऽपिजीवः सिद्धान्ते ज्ञानरूपतयाङ्गीकृतोऽत एव स ईश्वरवत् प्रत्यक्रूपदवाच्यः ॥१४॥

यः स्वस्मै स्वयमेव प्रकाशते स प्रत्यक् । एवकारेण नित्यविभूतिधर्मभूत ज्ञानयोर्व्यावृत्तिः । जीवस्य स्वरूपभूतं ज्ञानं धर्मीभूतज्ञानत्वेन तदाश्रितं तद्गुणभूतं चा ज्ञानं

यह अति प्रसिद्ध जीवात्मा द्रष्टा चाक्षुसज्ञान वाला है स्प्रष्टा त्वजिन्द्रिय से जायमान प्रत्यक्ष ज्ञानवाला है श्रोता सुनने वाला है घ्राता सुघने वाला है रसयिता रसादि विषयक ज्ञान वाला है मन्ता-मनरूप अन्तः इन्द्रिय से जायमान संकल्प का आश्रय वाला है बोद्धा निश्चय करने वाला कर्ता कर्ता रूप धर्म वाला विज्ञान स्वरूप वाला पुरुषः जीवात्मा है, इस श्रुति के प्रामाण्य से जीवात्मा के ज्ञानाश्रय होने पर भी सिद्धान्त में ज्ञानरूप से ही अङ्गीकार किया गया है इसीलिये जीवात्मा ईश्वर के समान ही प्रत्यक् शब्द से कहा जाता है ॥१४॥

जो अपने लिये अपने आप ही प्रकाशित होता है—अन्य की अपेक्षा नहीं रखता है वह प्रत्यक् कहलाता है । प्रत्यक् के लक्षण में 'एव' शब्द का प्रयोग किया गया है अतः नित्य विभूति एवं धर्मभूत ज्ञान में यह लक्षण नहीं जायगा क्योंकि वे अपने हेतु अपने ही प्रकाशित नहीं होते । जीनका स्वरूप

धर्मभूतज्ञानत्वेनाभिधीयते "सुखमहमस्वाप्सम्" इतिप्रतीत्या "जीवः स्वयं प्रकाशो ज्ञानत्वाद् धर्मभूतज्ञानवत्' इत्यनुमानाच्चजीवे स्वप्रकाशत्वसिद्धिः ॥१५॥

❀ जीवात्मनो नित्यम् ❀

सच जीवोनित्यः "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" (कठ. १।२।१८) "नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् (कठ. २।२।१३) इत्यादिश्रुतेः । जीवस्य जन्ममरणा-

भूत जो ज्ञान है वह धर्मीभूत ज्ञान के रूप में एवं जीव में आश्रित जीव को गुणभूत ज्ञान के रूप में कहा जाता है 'मैं सुखपूर्वक सोया' ऐसी सोकर जगे व्यक्ति के प्रतीति से एवं 'जीवात्मा स्वयं प्रकास वाला हैं ज्ञान होने से धर्मभूत ज्ञान के समान' इन दो सुखानुभव तथा अनुमान से जीवात्मा में स्व प्रकाशमान की सिद्धि होती है । इस विषय में विशेष जिज्ञासु जनों को श्रौतप्रमेय चन्द्रिका, बोधायन मतादर्श एवं ज.गु. श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र प्रणीत 'तत्त्वत्रय सिद्धि' एवं मेरी टीका 'तत्त्वदीप' का अनुसन्धान करना चाहिये ॥१५॥

❀ जीवनित्यहै ❀

वह अणु एवं चेतन स्वरूप जीवात्मा नित्य है क्योंकि ठकोपनिषद् कहतीं है—विपश्चित् स्वरूप से ही मेधावी यह जीवात्मा न जायते उत्पन्न नहीं होता है एवं न म्रियते नाश नही होता है । तथा जो नित्यानाम् नित्य स्वरूप से स्थित जीव वर्गापेक्षया भी नित्य नित्य है एवं चेतनानाम् चेतनों का

वस्थाऽवाप्तिशङ्का तु देहसंयोगवियोगावादाय समाधेया । जीवस्यानित्यत्वे तु कृतविप्रणाशाकृताभ्युपगमौ दोषौ भवेतामितिनित्यत्वमेवाभ्युपगन्तव्यं तस्य ॥१६॥

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् (छा० ६।२।२) इतिश्रुतिविरोधस्तु न शङ्कनीयः सिद्धान्ते सृष्टेः भी चेतनः–अन्तर्यामी रूप से सभी का प्रेरक चेतन है इत्यादि रूप से अतः जीवात्मा नित्य है । जीवका जन्म होता है एवं मृत्यु होती हैं इस प्रकार की अवस्था विशेष की आशंका का सामधान यह है कि जीव का देह के साथ संयोग ही जन्म है एवं उसका देह से वियोग ही मृत्यु है अतः जन्म तथा मृत्यु को लेकर जीवों की अनित्यता की आशंका नहीं करनी चाहिये । जीव को अनित्य मानने पर जोकि अनित्य नहीं है फिर भी दुराग्रह वश अनित्य मानें तो कृत विप्रणाश एवं अकृताभ्युपगम नामक दोषों की प्राप्ति अनिवार्य हो जायगी अतः जीव को नित्य ही मानना चाहिए अनित्य नहीं ॥१६॥

जीव को नित्य मानने पर सोम्य श्वेत केतु ? इदम् यह विभक्तनामरूप वाला परिदृश्य मान संपूर्ण स्थावर जंगात्मक संसार अग्रे सृष्टि से पूर्वकाल में एकम् नाम रूपसे विभक्त न होने से एकत्वरूप एकही अद्वितीयम् दूसरे अधिष्ठान से रहित सत् पुरुष काल प्रकृति शरीर वाला यह पुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी एव निश्चय रूपसे आसीत् था इस श्रुतिसे विरोध होगा ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में सृष्टि से पूर्व में नाम एवं रूप के विभाग का अयोग्य नाम रूप विभाग रहित

प्राङ् नामरूपविभागानर्हचिदचिद्विशिष्टस्यैकस्य ब्रह्मणः स्वीकारात् ॥१७॥

अत उक्तमेतच्छ्रुतेरानन्दभाष्ये भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैः "यद्यप्ययं सच्छब्दोविशेष्यलक्षणपरमात्मबोधकस्तथापि कारणविषयत्वसामर्थ्यात् कारणता प्रयोजकगुणविशिष्टप्रकृतिपुरुषकालशरीरकं परमात्मानमेव समुपस्थापयति (छान्दोग्यानन्दभाष्यम् ६।२।१) इति । "इदं प्रत्यक्षादिप्रमाणेन परिदृश्यमानं जगद्विभक्तनामरूपं बहुत्वावस्थं सृष्टेः पूर्वं निमित्तान्तररहितमविभक्तनामरूपतया एकं सच्छब्दशब्दितं ब्रह्मलक्षणमेवाभवदिति (छांदोग्यानन्दभाष्यम् ६।२।१) इति च ॥१८॥

चित एवं अचित् विशिष्ट एक ही ब्रह्म को स्वीकार किया जाता है अतः श्रुति के विरोध की सम्भावना नहीं है ॥१७॥

इसी तत्त्व को प्रकृत श्रुति के आनन्दभाष्य में भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने स्पष्ट किया है यद्यपि श्रुति में पठित यह सत् शब्द विशेष्य रूप परमात्मा का बोधक है तथापि कारण विषयता के सामर्थ्य से कारणता के प्रयोजक गुणसे युक्त प्रकृति पुरुष एवं काल शरीर वाले परमात्मा को ही ऊपस्थापित करता है। एवं ये प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परिदृश्यमान संसार नाम एवं रूप से विभक्त बहुत स्वरूपों को प्राप्त है वह सृष्टि से पहले किसी अन्य निमित्त से रहित नाम तथा रूपसे अविभक्त होने से एक ही हैं वही सत् शब्द से कथित ब्रह्म नाम वाला हुआ, अतः इस भाष्य के अनुसन्धान से स्पष्ट हैं कि जीव को नित्य मानने में कोई भी श्रुति विरोध नहीं करती है ॥१८॥

॥ जीवात्मनोऽणुत्वम् ॥

"एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः" (मु० ३।९) "बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते" (श्वे० ५।९) "आराग्रमात्रोह्यवरोऽपिदृष्टः" (श्वे ५।८) इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यादणुपरिमाणोऽयं जीवात्मा ॥१९॥

॥ जीवअणु है ॥

एषः—इस अणुः—सर्वतोभावेन सूक्ष्मः-अतिसूक्ष्म आत्मा को चेतसा विशुद्ध मनसे वेदितव्यः—जानना चाहिये । बालाग्रशतभागस्य बाल की नोक के सौवे भाग के च—फिर शतधा सौ भागों में कल्पितस्य—विभक्त किये जाने पर भागः—जो भाग होता है सः—वही यानी बाल के नोक का दशहजारवां भाग के बराबर जीवः—जीव का स्वरूप हैं ऐसा विज्ञेयः-- जानना चाहिये च—और सः—वह जीव अनन्त्याय—अपने धर्मभूत ज्ञान के विकास होने से अनन्तत्व असीमत्व अपरिच्छिन्नत्व रूप से कल्पते अभिव्यक्त हो जाता है-यानी अनन्त भाव वाला होने में सक्षम है । आराग्रमात्र सूई के नोकके भागके समान सूक्ष्म आकृति वाला हि निश्चय कर के अपि—उससे भी अवरः=अति सूक्ष्म परिमाण वाला जीव दृष्टः—शास्त्र में वर्णित रूप से शास्त्र तत्वज्ञों द्वारा प्रत्यक्ष के समान अनुभूत है । इत्यादि श्रुतियों के प्रामाण्य से यह जीवात्मा अणु परिमाण वाला है ॥१९॥

स्थूलदेहमपहाय सूक्ष्मदेहोपादानकाले सकलस्यावकाशाभावात् स्वरूपशैथिल्यप्रसङ्गाच्च हेय एव सर्वथा जीवमध्यमपरिमाणवादः ॥२०॥

ननु सङ्कोचविकाशावङ्गीकृत्य स्थूलसूक्ष्मजीवानां क्रमात् सूक्ष्मस्थूलदेहप्रवेशस्योपपन्नत्वेन समीचीन एव जीवमध्यमपरिमाणवाद इति चेन्न, तथात्वे जीवानां सावयवत्वेनानित्यत्वापत्तेः ॥२१॥

जीव के स्थूल हाथी का जैसा बडे शरीर को छोड सूक्ष्म मच्छर का जैसा छोटा शरीर धारण प्रसंग में पूरे जीव के स्वरूप के लिये अवकाश हाथी रूप जीव के अपेक्षा मच्छर रूप जीव के छोटे होने से उसमें समावेश न हो सकने से एवं मच्छर रूपजीव के अपेक्षा हाथीरूप जीव के बडे होने से स्वरूप से ही शीथिल ढीला हो जाने से दोनों में असम्बद्धता होगी अत: जैनियों से स्वीकृत जीवका मध्यम परिमाण वादको सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥२०॥

यदि सङ्कोच तथा विकाश यानी हाथीरूप जीव का छोटा होना एवं मच्छर रूप जीव को बडा हो जाना मानकर स्थूल तथा सूक्ष्म जीवों को क्रमश: स्थूल का सूक्ष्म में एवं सूक्ष्म का स्थूल देह में निवेश प्रवेश हो सकता है अत: जीव का मध्यम परिमाण वाद समीचीन ही है यह भी अच्छा नहीं है क्योंकि जीवों को संकोच एवं विकाश वाले मानने से वे अवयव वाले स्वीकृत होंगे सावयव तत्त्व अनित्य होता है तो जीवों में भी अनि त्यत्व को आपत्ति होगी जीव तत्त्व नित्य है अत: जींव मध्यम परिमाण वाला नहीं किन्तु अणु परिमाण वाला ही है ।२१।

ननु शरीरव्यापिसुखदुःखाद्युपलब्धये सुदूरदेशेऽपि जीवादृष्टप्रयुक्तजीव भोग्यपदार्थोत्पत्तते च जीवविभुत्वमेवाङ्गीकर्तव्यमिति चेन्न, तथात्वे जीवोत्क्रान्त्यादि प्रतिपादकश्रुतिव्याकोपप्रसङ्गात् ॥२२॥

जीव के मध्यय परिमाणवाद के निरस्त होने पर व्यापक-परिमाणवादी की आशंका है कि जीवों के समस्त शरीर में व्याप्त सुखों एवं दुःखों की उपलब्धि अनुभव तथा सुदुर प्रदेश में स्थित जीवों के अदृष्ट जन्य पूर्वकृत कर्मों के परिणाम रूप से जायमान फलों के जो जीवों के भोग्य पदार्थ के रूप से उपस्थित होते हैं उनके उत्पत्ति उपलब्धि प्राप्ति के लिये जीव को विभु परिमाण वाला ही अङ्गीकार करना चाहिये अणुमानने पर दूर स्थित भोग्य पदार्थ का उपभोग नहीं कर पायेगा ऐसा कहना भी उचित नहीं है, जीवों को विभु परिमाण वाले मानने से जीवों की उत्क्रान्ति ऊपर जाना गमन करना आगन करना यानी जाना आना आदि का प्रतिपादन करने वाली श्रुति के साथ विरोध होगा । व्यापक पदार्थ के सर्वगत होने से गमन आगमन नही हो सकता है । श्रुति कहती है जीव स्वर्गादि लोकों में जाता आता है अतः वेद वाणी से विरोध होने से जीवात्मा का विभू होना शास्त्र विरुद्ध है । किन्तु अणु परिमाण ही सर्व शास्त्र सम्मत है इस वात को ब्रह्म है।२२। सूत्रकार एवं आनन्दभाष्यकारजी ने स्पष्टतया उद्घोषित किया

तथा चाहुर्ब्रह्मसूत्रकारा भगवन्तो बादरायणाः "उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्" (ब्र.सू. २।३।२१) व्याख्यातञ्चैतत्स्पारमार्ष सूत्रञ्चैवमेवानन्दभाष्यकारैर्भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैः श्रीसम्प्रदायप्रधानाचार्यैः स्वभाष्ये, तथाहि "आत्मनः सर्वगतत्वं निराकरोति "उत्क्रन्तीत्यादिना। ताभ्य इत्यनुवर्तते, नायमात्मा सर्वगतः किन्त्वणुरेवः-उत्क्रान्ति गत्यागतीनाम्। आत्मोत्क्रान्ति तद्गतितया गतिश्रुतिभ्य इत्यर्थः। "तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति"

जीवात्मा के अणुत्व होने के विषय में श्रीवदरायणजी के मत को वतलाते हैं तथा च से ब्रह्मसूत्रों के रचयिता भगवान् वादरायण श्रीव्यासजी कहते हैं "उक्रन्ति गत्यागतीनाम्" इति। श्रीसम्प्रदाय के प्रधान आचार्य भगवान् श्रीआनन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने इस परम प्रमाणभूत वेद रूप सूत्र की व्याख्या अपने भाष्य में जीवात्मा के अणुत्व रूप से ही की है ब्रह्मसूत्रकार आत्मा के सर्व गतत्व का निराकरण करते हैं उक्रान्ति आदि सूत्रसे, ताभ्यः इसका १९ वें सूत्रसे अनुवर्तन किया जाता है तव यह अर्थ निष्पन्न होता है यह आत्मा सर्वगत नहीं है किन्तु अणु परिमाण वाला ही है क्यों आत्माकी उत्क्रान्ति गति एवं आगति आदि के रूप में श्रुति प्रति पादन करती है "उस ज्योतिः स्वरूप से यह आत्मा शरीर से निकल जाती है" "जो कोई भी जीव इस लोक से जाते हैं वे सव चन्द्र-

(बृ० ६।४।२) "ये वै के चास्माल्लोकात् प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति" (कौषीतकी १।२) "तस्माल्लोकात् पुनरेत्यस्मैलोकाय कर्मणे" (बृ. ६।४।२) इत्यादिगत्यागत्युत्क्रान्तिश्रुतिभ्य आत्मनः सर्वगतत्वंनोपपद्यते किन्त्वणुत्वमेव । सर्वगतस्यविभोर्गतिश्चागतिश्चा नोपपद्यते तस्मादात्मनोऽणुत्वमेव (आनन्दभाष्यम् २।३।२१) इति ॥२३॥

घटोपाधिकाकाशवच्छ्रुत्यननुमतस्यान्तः करणोपाधिक चैतन्यात्मकजीवस्य गत्या दिस्वीकारे तु "अथैष सम्प्रसादो

लोक में ही जाते हैं" उस लोक से पुन इस लोक में कर्म फल भोगार्थ आते हैं" इत्यादि श्रुति प्रतिपादित गति जाना आगति-आजाना उत्क्रान्ति ऊपर जाना आदि के अनुभव होने से आत्मा का सर्व गतत्व नहीं हो सकता है किन्तु अणुत्व ही सिद्ध होता है कारण यह कि सर्वगत विभु पदार्थ का गति एवं आगति उपपन्न नही हो सकता है अतः आत्मा जीवात्मा अणु ही है विभु व्यापक नहीं ॥२३॥

घटोपाधिक आकाश के समान यानी अद्वैत वेदान्त की मान्यता के अनुसार घट के नष्ट होने पर घटाकाश मठाकाश में एवं मठ के नष्ट होने पर मठाकाश महान् आकाश में विलीन होता है इसमें जैसे औपाधिक रूप से संसरण प्रक्रिया होती है

ऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" (छा०८।१२।२) इत्यादिश्रुतिविरोधो ऽनिवार्य एव तस्मादणुपरिमाण एव जीवः ॥२४॥

गृहकोणस्थितस्यापि दीपस्य स्वप्रभया गृहस्य सर्वप्रदेशे व्याप्तिरिवाणुपरिमाणकस्यापि जीवस्य स्वधर्मभूतज्ञानद्वारा देहस्य सर्वप्रदेशे व्याप्तिरस्त्यतो न काचिदनुपपत्तिः शरीर व्यापिसुखाद्युपलब्धौ ॥२५॥

वैसे ही श्रुति मत के विरुद्ध अन्तः करण रूप उपाधि से युक्त चैतन्यस्वरूप जीवात्मा की गति एवं आगति स्वीकार करने पर जैसे अभ्रादि स्वकारणभूत परस्वरूप में अवस्थित होता है उसी प्रकार यह जीव भी इस शरीर से अर्चिरादि मार्ग विशेष से जाते हुये जाकर परम ज्योति देश विशेष श्रीसाकेत में स्थित परब्रह्म श्रीरामजी को प्राप्त कर के स्वकीय स्वाभाविक रूप से युक्त होता है, इत्यादिश्रुति का विरोध अनिवार्य हो जाता है अतः जीवात्मा अणु परिमाण वाला हीं है विभु नहीं विभु का गमन कथमपि नहीं हो सकता है ॥२४॥

जीवात्मा को अणु मानने पर सर्व शरीर में अनुभव होने वाला सुख एवं दुःख का अनुभव नहीं हो पायेगा ऐसी आशंका भी युक्त नहीं है क्योंकि जैसे घरके एक कोने में स्थित दीप अपनी प्रभा प्रकाश से घर के सभी स्थान को प्रकाशित कर देता है उसी प्रकार जीव के अणु परिमाण वाला होने पर भी अपने धर्मभूत ज्ञान के द्वारा शरीर के सभी प्रदेश में व्याप्त होने से शरीर में कहीं भी स्थित सुख या दुःख के उपलब्धि अनुभव करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती है ।२५।

एवं जीवादृष्टमपि सर्वव्यापीश्वरेच्छाऽनन्तरमेव । अत एवोक्तमाचार्यसार्वभौमैः श्रीद्वारानन्दाचार्यैः "दैवाभिदास्ति जीवानां पूर्वकर्मफलप्रदा । यस्येच्छा सदसद्रूपारामचन्द्रं नमामि तम्" (श्रीरामचन्द्र दशकम्) इति । अतो दूरदेशेऽपि अदृष्टप्रयुक्ततत्तज्जीवभोग्यपदार्थोत्पत्तिरप्यनुपपत्ति शून्यैवेतिध्येयम् ॥२६॥

इसी प्रकार जीव का अदृष्ट पूर्व जन्म कृत फलप्रद कर्म का भी सर्व व्यापक ईश्वर के इच्छा रूप ही होने से जीव को दूरदेश वर्ती फलों के भोग में कोई आपत्ति नहीं होगी । इसीलिये श्रीरामचन्द्र दशक नामक प्रबन्ध में आचार्य सार्वभौम श्रीद्वारानन्दाचार्यजी ने कहा है—जीवों के पूर्वजन्म में किये गये कर्म फलों को देनेवाली दैव नाम की इच्छा शक्ति है ऐसे जीव के कर्मानुसार सत् एवं असत् फल प्रदाता इच्छा रूप शक्ति वाले श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार करता हूं, अतः दूर देश में भी अदृष्ट से सम्बन्धित पूर्व जन्म कृत कर्म से जायमान जीवों से भोग्य उन उन पदार्थों की उपलब्धि किसी भी प्रकार की आपत्ति से रहित ही है अर्थात् ईश्वरेच्छा रूप अदृष्ट के होने से कहीं भी स्थित पदार्थ का भोग ईश्वर की प्रेरणानुसार जीवोंको सुलभ हो जाते हैं अतः जीवाणुत्ववाद में कोईभी दोष नहीं है ।२६।

卐 कर्त्तृत्वम् 卐

"एष द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः" (प्र० ४।९) इति श्रुत्या बोद्धेत्येव रूपेण ज्ञानाश्रयत्ववत् कर्त्तेत्येवं रूपेणकर्तृत्वाश्रयत्वमपि प्रतिपादितं जीवात्मनोऽतस्तस्याकर्तृत्वापादनं श्रुति विरुद्धमेव ॥२७॥

अत एवोक्तं जगद्गुरुभिः श्रीचिदानन्दाचार्यैश्चिदात्मप्रबोधे

"अकर्ता विभुर्नाथवा मध्यमानो
न वा ज्ञानशून्जो जडो दुःखरूपः ।

卐 जावकर्ता है 卐

यह प्रसिद्ध आत्मा द्रष्टा चाक्षुष ज्ञानवाला प्रष्टा—त्वगिन्द्रिय से जायमान ज्ञानवाला श्रोता सुनने वाला घ्राता सूघने वाला रसयिता रसका आस्वादन करने वाला मन्ता मनन या संकल्प करते वाला बोद्धा निश्चय करने वाला कर्त्ता कर्ता रूप धर्मवाला विज्ञानात्मा विज्ञान स्वरूप वाला पुरुषः जीवात्मा है इत्यादि श्रुति द्वारा 'बोद्धा' इस शब्द से प्रतिपादित ज्ञानाश्रयत्व ज्ञान का आश्रय आधार के समान 'कर्त्ता, इस शब्द से कर्तृत्वाश्रय कर्ता का आश्रय आधार भी जीवात्मा को ही श्रुति ने प्रतिपादन किया है इसलिये जीवात्मा को अकर्त्ता के रूष मे प्रतिपादन करना श्रुति विरुद्ध ही है बेद शास्त्रादि सम्मत नहीं ॥२७॥

इसीलिये जगद्गुरु श्रीचिदानन्दाचार्यजी ने चिदात्म प्रबोध नामक प्रबन्ध में जीवात्मा का स्वरूप प्रति पादन करते हुये कहा

अणुर्ब्रह्मणोंऽशः शरीरं च शेषः परं
रामचन्द्रस्य दासश्चिदात्मा" इति ॥२८॥

सूत्रितं च ब्रह्मसूत्रकारैर्भगवद्भिर्बादरायणैः "कर्त्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्" (ब्र.सू.२।३।३४) इति । व्याख्यातञ्चैतत् प्रमिताक्षरावृत्त्याख्ये श्रीबोधायनवृत्तिसारे जगद्गुरुभिः श्रीदेवानन्दाचार्यैः । तथाहि–"आत्मा कर्ता न तु प्रकृतिः

अकर्ता यह जीव न कर्ता नहीं यानी कर्ता है एवं विभु न विभु नहीं यानी अणु हैं या मध्यमान न मध्यम परिमाण वाला भी नहीं यानी अणु ही है अथवा ज्ञान शून्यः न ज्ञान शून्य नहीं है यानी ज्ञान वाला है जडः न जड नहीं है यानी चेतन है दुःस्वरूपः न दुःखस्वरूप नहीं है यानी परिणामतः सुखरूप है तो इस जीवात्मा का वस्तुतः स्वरूप अणु है ब्रह्म श्रीरामजी का अंश है उन्हीं का शरीर एवं उनका ही शेष यथेच्छ उपयोग करने योग्य हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी का ही दास है अन्य किसी का नहीं ॥२८॥

जीवात्मा कर्ता है इस विषय को ब्रह्मसूत्रकार भगवान् श्रीबादरायणजी ने 'कर्ता शास्त्रार्थ वत्त्वात्' इस सूत्र से निरूपण किया है । इस सूत्रकी व्याख्या जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी ने प्रमिताक्षरानामक श्रीबोधायनवृत्तिसार में जीव को कर्त्ता के रूप में ही की है जैसे कि 'आत्मा कर्ता है प्रकृति नहीं, क्योंकि स्वर्ग की इच्छावाला ज्योति ष्टोम नामक यज्ञ करे' इत्यादि शास्त्रों का स्वर्ग की इच्छा वाला पुरुष यज्ञ में अप्रवृत्त पुरुष को उस

'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिशास्त्राणामप्रवृत्तस्य पुरुषस्य प्रवर्त्तकबोधोत्पादनद्वारा प्रवृत्त्युत्पादनेनार्थवत्त्वात्। अन्तः करणस्य प्रवर्त्यत्वस्वीकारे तु तस्याचेतनत्वेन प्रवर्त्तक बोधोत्पादनासम्भवाच्छास्त्रवैफल्यमनिवार्यमेव" (बोधायन वृत्तिसारः) इति ॥२९॥

जीवकर्तृत्वं च न जीवायत्तं किन्तु परमात्मा यत्तमेव ॥३०॥

ऊचुश्च "परात्तु तच्छ्रुतेः" इत्येतत्सूत्रभाष्य आनन्द भाष्यकारा आचार्यसार्वभौमा भगवन्तः श्रीरामानन्दा चार्याः-"तु शब्दः पूर्वपक्षव्यावृत्यर्थः । तज्जीवस्य

मेंप्रवर्त्तन रूप ज्ञान के उत्पादन द्वारा प्रवृत्ति के उत्पादन करने से अर्थवत्त्वशास्त्र सार्थक होता है, अन्तःकरण का प्रवर्त्य प्रवर्तन करने वाला कर्ता मानें तो उसके अचेतन होने से प्रवर्तक बोध का उन्पादन असम्भव होने से शास्त्र की निरर्थकता अनिवार्य है जोकि वेदादि शास्त्र कभी व्यर्थ नहीं होते अतः जीव कर्ता है यह निश्चित है ॥२९॥

जीवात्मा में कर्तृत्व सिद्ध हो तो भी वह जीव कर्तृत्व जीवात्मा के अधीन नहीं है किन्तु परमात्मा के ही अधीन वह जीव कर्तृत्व है स्वतन्त्र नहीं ॥३०॥

जीव कर्तृत्व परमात्माधीन है इस विषय को 'परात्तु तद् श्रुतेः' २।३।४१ इस सूत्र के आनन्दभाष्य में आनन्दभाष्यकार आचार्य सार्वभौम भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने निरूपण

कर्तृत्वं पराज्जीवान्तर्यामिणः परमात्मन एव भवति कुतः ? तच्छ्रुतेः "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा (तै०आ ३।११।१०) "य आत्मनमन्तरो यमयति" (बृ. ३ ७-२२) "एष ह्येवैनं साधुकर्म कारयति तं यमन्वानुनेषत्येष एवैनमसाधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्यो नुनुत्सते" (कौषी० ३।८) इति तस्य जीवकर्तृत्वस्य परमायत्तत्व श्रुतेः। तस्माज्जीवकर्तृत्वं परमपुरुषायत्तमेव (आनन्दभाष्यम् २।३।४१) इति ३१

किया है तु शब्द पूर्व पक्ष के व्यावृत्ति निराकरण के लिये है परिचर्च्यमान प्रसिद्ध इस जीवात्मा का कर्तृत्व कर्तापन पर-परमेश्वर जीवात्मा के अन्तर्यामि रूपसे स्थित परमात्मा काही है जीवात्मा का नहीं क्यों ! श्रुतियों ने जीवान्तर्यामी ईश्वर को ही कर्ता के रूपमें निरूपण किया है इसलिये। वह सर्वात्मा जीवों के अन्दर प्रविष्ट होकर शासन करता है जो आत्मा के अन्दर रहकर आत्मा का नियमन करता है' 'यही सर्व नियन्ता अच्छे कर्म कर वाता है जिसे ऊपर के अच्छे लोकमें ले जाने की इच्छा करता है या जिसे अधोलोक में ले जाने की इच्छा रखता है तो उससे असाधुकर्म करवाता है' इत्यादि श्रुतियों से जीव कृत कर्म जीवके स्वतन्त्र न होकर पराधीन ईश्वराधीन सिद्ध होता हैं इसलिये जीव कर्तृत्व परम पुरुषाधीन है जीवात्मा के अधीन नहीं ॥३१॥

कर्तृत्वप्रतिपादनाद् भोक्तृत्वमपि प्रतिपादितं भवति जीवानाम् ॥३२॥

卐 देहादिभ्यो वैलक्षण्यम् 卐

जीवश्च न देहेन्द्रियप्राणबुद्धिस्वरूपः 'मम देहः' मम चक्षुरादीनीन्द्रियाणि 'मम प्राणाः' 'मम बुद्धिः' चेत्यादि प्रतीतेः ॥३३॥

ऊचुश्च श्रौततत्त्वसमुच्चये भगवन्तः श्रीराघवानन्दाचार्याः— "स च यस्यात्मा शरीरम्" इतिश्रुतिप्रामाण्यादी·

पूर्वोक्त रूप से श्रुति प्रामाण्यतया जीवात्माओं का कर्तृत्व प्रतिपादन होने से भोक्तृत्व कर्मफलों के भोक्ता भी जीवात्मा ही है यह सुतरां सिद्ध हो जाता है इसमें किसी प्रामाणान्तर की आवश्यकता नहीं ॥३२॥

卐 जीव देहादिसे विलण है 卐

वेदादि सभी शास्त्रों द्वारा कर्ता एवं भोक्ता के रूपमें प्रतिपादित यह जीव देह शरीर इन्द्रिय प्राण बुद्धि स्वरूप नहीं है क्योंकि 'मेरा देह' मेरी आखें मेरी इन्द्रिया मेरा प्राण मेरी बुद्धि इस प्रकार अपने जीब से अलग रूप से ही सभी को प्रतीति होती है मैं प्राण हूं, मैं बुद्धि हूं इस प्रकार कोई भी अनुभव करता या कहता नहीं है अतः देह आदि से जीव सर्वथा भिन्न है ॥३३॥

जीवात्मा के देहादि से सर्वथा भिन्न होने के विषय में भगवान् श्रीराघवानन्दाचार्यजीजे श्रौततत्त्व समुच्चय नामक अपने प्रबन्ध में कहा है—वह जीव जिसकी आत्मा जीवात्मा शरीर है

श्वरशरीररूपोऽपि न पाञ्चभौतिकस्वशरीररूपोऽहमित्युपलभ्यमानत्वात् 'मम पाञ्चभौतिकं शरीरम्' इति शरीरात् पृथक्त्वेनोपलभ्यमानत्वात् "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" (क० १-२-१८) "नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानाम्" (क० २-२-१३) इत्यादिश्रुतिभिर्नित्यत्वेन प्रतिपादितत्वाच्च ३४

इन्द्रियप्राणबुद्धिवैलक्षण्यमप्यनयैवरीत्या बोध्यम् । अत एवोक्तं जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यैः :-

इत्यादि श्रुतिकी प्रामाण्य से ईश्वर का शरीर रूप भी नहीं है क्योंकि मैं पांच भौतिक शरीर वाला हूं' इस प्रकार सभीको अनुगम करते एवं अपने भी यह मेरा पांच भौतिक शरीर हैं इस प्रकार शरीर से जीवआत्मा को अलगरूप से ही अनुभव करते हीं पाते हैं तथा 'यह जीवात्मा उत्पन्न नही होता है एवं मरता भी नहीं है और 'नित्य रूपतया स्वीकृतों से भी यह जीवात्मा नित्य है तदा चेतनतत्वों का भी यह चेतन है' इत्यादि श्रुतियों से जीवात्मा का नित्यत्व रूप से प्रतिपादन हुआ है देहादि नित्य नहीं हैं अतः यह जीवात्मा शरीर से भिन्न है ॥३४॥

मेरे इन्द्रिय मेरा प्राण मेरी बुद्धि इस प्रकार की प्रतीति होती है अतः इन सबों से भी जीवात्मा भिन्न है इन्द्रिय प्राण एवं बुद्धि रूप नहीं । इसीलिये जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजीने श्रौत सिद्धान्त विन्दु में कहा है 'यह जीवात्मा सुख स्वरूपवाला अणु-स्वरूप वाला एवं चित् चेतन स्वरूप और ज्ञातृ-ज्ञान स्वरूप

सुखञ्चाणुचिज् ज्ञातृरूपोऽस्ति जीवः
परब्रह्मणोंऽशस्तनु नित्यशेषः ।
न देहेन्द्रिय प्राणबुद्धि स्वरूपो
विकारी जडो ब्रह्मरूपोऽपि नैव" (श्रौतसिद्धांतविन्दुः ४ इति ॥३५॥

उक्तञ्च बोधायनमतादर्शाख्यायां सहस्रश्लोक्यां जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यप्रशिष्यै जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यैः सिद्धान्तसार्वभौमैः—

वाला है, और परब्रह्म श्रीरामजी का अंश रूप नित्य है एवं शरीर तथा श्रीरामचन्द्र का शेष है अतः यह जीवात्मा देह इन्द्रिय प्राण एवं बुद्धि स्वरूप नहीं है तथैव विकारी बिकृत होने वाला जड-ज्ञान शून्य एवं ब्रह्मरूप भी नहीं है ॥३५॥

जीवात्मा के देहादि से विलक्षणता के विषय में श्रीबोधायन मतादर्श नामक हजार श्लोक वाले दिव्य प्रबन्ध में जगद्गुरु श्री श्रुतानन्दाचार्यजी के प्रशिष्य जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी सिद्धांत सार्वभौम ने भी कहा है—मैं स्थूल हूं मैं जाता हूं, ईत्यादि ज्ञान या अनुभव होता है अतः शरीर चेतन तत्त्व है इसलिये यही जीव है मृत शरीर में प्राण के चले जाने से चेतन नहीं रहता है अतः शरीर को जीवात्मा मानने में कोई आपत्ति नहीं हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि यह कथन विकल्प—सद् युक्ति सद् शास्त्रों के तर्क को वहन नहीं कर सकता है जैसेकि वह

"स्थूलश्चाहं हि गच्छामि प्रत्ययाच्चेतनस्तनुः ।
मृते देहे तु चैतन्यं प्राणनिर्गमनान्नहि ॥८७७॥
इति चेन्न वरं चैतद् विकल्पासहतायतः ।
देहस्यावयवे तच्चैकस्मिन् सर्वेषु वास्ति हि ॥८७८॥
नाद्यः प्रतीयते यस्माच्चैतन्यमितरत्र च ।
बहुचेतनवत्वं स्यादन्त्ये चैकतनावथ ॥८७९॥

शरीर में मानी हुई चेतनता देह के अवयव किसी एक भाग में है या सर्व शरीर में है ? उसमें से प्रथम पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि शरीर के इतर यानी प्रत्येक अवयव में चेतनता की प्रतीति होती है । एवं दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है कारण कि एक ही शरीर में बहुत चेतना की प्रतीति होने लगेगी जिस एक ही काल में अनेक चेतन को अनेकानुभव होने से व्यवहार का ही नाश हो जायगा एवं हाथ पैर आदि किसी अवयव के अलग होने से स्मृति भी नहीं हो पायेगी अतः उक्त दोनो ही पक्ष युक्ति युक्त नहीं हैं ।" तनुः आत्मा न संघातरूपवत्वात् घटवत्" यानी शरीर आत्मा नहीं है संघात—समूह अवयव रूप होने से घट के समान इस अनुमान के द्वारा भी शरीर में आत्मताकी सिद्धि नहीं होती है क्योंकि सभी शरीर धारी को मेरा देह' इस प्रकार की प्रतीति अपने से भिन्न रूप से ज्ञात होती है एवं शरीर अनित्य है तथा जड है आत्मा नित्य एवं चेतन है अतः शरीर को आत्मा नहीं माना जा सकता है ।

उच्छेदो व्यवहारस्य वैमत्ये तु मिथो भवेत् ।
हस्ताद्यन्यतमोच्छेदे स्मृतेश्चानुपपन्नता ॥८८०॥
संघातरूपवत्वान्न त्वात्मा तनुर्यथा घटः ।
देहस्यानात्मता सिद्धा चेत्येवमनुमानतः ॥८८१॥
मम देहः प्रतीतेश्च नात्मता मन्यते तनोः ।
अनित्यत्वाज्जडत्वाच्च शरीरस्यात्मता नहि ॥८८२॥
इन्द्रियस्य नचात्मत्वं 'ममेन्द्रियं प्रतीतितः ।
जीवत्वं न च नेत्रादेस्तच्छून्ये जीव्यते यतः ॥८८३॥
'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
भोगोपकरणं चैवं तस्मादात्मा मनो नहि ॥८८४॥

शरीर के समान ही इन्द्रिय को भी आत्मा नहीं माना जा सकता है क्योंकि प्रत्येक को 'मेरा इन्द्रिय' ऐसा अपने से अलग रूप से ही अनुभव होता है अभिन्न रूप से नही अतः नेत्र काम आदि इन्द्रिय जीवात्मा नहीं क्योंकि उनके विना भी जीया जाता है—अन्धे बहरे लूले लंगडे आदि मर नहीं जाते जीन्दे रहते हैं अतः इन्द्रियातिरिक्त जीवात्मा है। मनुष्य का बन्धन एवं मोक्ष का कारण मन ही है—विषयों में आसक्त मन बन्धन का कारण वनता है विषयासक्ति रहित मन मोक्ष का कारण होता है इस शास्त्र प्रमाण से तो मात्र भोग का उपकरण से सिद्ध मन साधन है इसलिये मन आत्मा नहीं है इससे भिन्न कर्त्ता भोक्ता ही जीवात्मा है। "मेरे प्राण" ऐसी प्रतीति सभी मानव को होती है इसलिए प्राण भी आत्मा नहीं है यदि प्राण ही आत्मा होती तो

मम प्राणः प्रतीतेश्च प्राणस्य चात्मता न हि।
'प्राणोऽस्मीति श्रुतौ चोक्तः प्राणदेहीपरेश्वरः ॥८८५॥
अहं जानामि चेत्यत्राहमर्थस्यात्मता खलु।
तस्य धर्मतया ज्ञाने ज्ञाते सा न कथञ्चान" ॥८८६॥
इति ॥३६॥

जीवाश्च "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" (गीता १५-९) इति भगवद्वचनप्रामाण्याद् विशिष्टस्य विशेषणवद् ब्रह्मणोंऽशभूताः ॥३७॥

मेरा प्राण ऐसा व्यवहार नहीं होता। प्राणोऽस्मि इत्यादि रूप से वेद में जो वर्णण आता है वह तो "यस्य पृथिवी शरीरम्" आदि श्रुतियों के सामञ्जस्य से प्राण शरीर वाले परब्रह्म है ऐसा तात्पर्य है न कि प्राण ही ब्रह्म है अर्थ है प्राण शरीर वाले ऐसा अर्थ को न मानने पर 'पृथिवी शरीर' वाली श्रुति का अर्थ विरुद्ध होता है अतः प्राण शरीर वाले परेश्वर श्रीराम अर्थ ही युक्ति एवं श्रुतिसिद्ध है। 'मैं जानता हूं' ऐसे अनुभव से अहमर्थ यानी जानना रूप ज्ञान को भी आत्मा नहीं माना जा सकता क्योंकि ज्ञान आत्मा का धर्म है जीवात्मा धर्मी है धर्म एवं धर्मी अलग पदार्थ है अतः ज्ञान जीवात्मा का धर्म भूत ज्ञान है इसलिये वहआत्मा नहीं ज्ञानातिरिक्त ही आत्मा है ॥३६॥

पूर्वोक्त प्रकार से देह एवं इन्द्रियादि से भिन्न रूप से निरूपित जीवात्मा 'सनातन सर्वदा एकरूप से स्थित यह आत्मा मेरा ही अंशभूत है जो जीवभूत-प्राक्तन कर्म रूप अविद्या से

स्वयं बन्धन प्राप्तकर विपच्य मान कर्म फल भोग के हेतु संसार में अवस्थित है इत्यादि भगवद् वचन प्रमाण से विशिष्ट का विशेषण के समान ब्रह्म के अंश भूत हैं । जीव स्वरूपतः एवं तत्त्वतः सर्वेश्वर श्रीरामजी से भिन्न तत्त्व है । सृष्टि से पूर्व नाम एवं रूप के बिभाग रहित सूक्ष्म चित् जीव चेतन तत्त्व तथा अचित् जड प्रकृति तत्त्व से युक्त श्रीराम-ईश्वर रहता है वही सृष्टिकाल में नाम एवं रूप के विभाग योग्य स्थूल चित एवं स्थूल अचित् से युक्त श्रीराम-ईश्वर तत्त्व रहता हैं । सृष्टि पूर्व सूक्ष्म तथा सृष्टिके वाद स्थूल दोनों अवस्था में विशेषणों से युक्त ही होने से श्रीरामचन्द्रजी विशिष्ट ब्रह्म हैं उन्हीका अपृथक् सिद्ध श्रीराम तत्त्व से अलग नहीं होने वाला विशेषण रूप जीवात्मा तत्त्व के होने से जीव तत्त्व ब्रह्म का अंश कहलाता है । अंश यानी श्रीरामतत्त्व से अलग न होने वाला श्रीरामजी का विशेषणी भूत जीव तत्त्व, लकडी के खण्ड के समान अलग होने वाला भाग अंश नहीं यदि ऐसा माने तो जीव में अनित्यत्वापत्ति होगी जो वेदादिशास्त्र मर्यादा विरुद्ध है इस विषय में विशेष जानकारी के लिये जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र कृत तत्त्वत्रय सिद्धि उसमें मेरा तत्त्व दीप एवं श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर की मेरी टीका प्रभा-किरण जगदाचार्य श्रीयोगीन्द्रजी कृत वेदार्थ चन्द्रिका उसमें मेरी टीका प्रकाश किरण एवं जगद् विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य जी कृत गीतार्थ चन्द्रिका प्रभृति सद्ग्रन्थों को देखें ॥३७॥

॥ जीवानांमिथोभेदः ॥

अनन्ताः परस्परभिन्नाश्च जीवाः । अन्यथा "नित्यो नित्यानाम्" (क. २-२-१३) 'नत्वेवाहं जातुनासं न त्वं नेमे जनाधिपाः । न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् (गी० २।१२) इत्यादिश्रुतिस्मृतिव्याकोपः प्रसज्येत । जीवानामैक्य एकः सुख्यपरो दुःखी केचिद् बद्धाः केचिन्मुक्ता इत्यादिव्यवस्था चा न स्याद् ॥३८॥

॥ जीवात्माभिन्न भिन्न हैं ॥

पूर्व प्रकार से विवेचित जीवात्मा की संख्या अनन्त है एवं परस्पर में भिन्न भी हैं । यदि ऐसा न माना जाय या ऐसा न हो तो 'नित्योनित्यानाम्' यानी जो सर्वेश्वर श्रीरामजी नित्य स्वरूप में शास्त्रों में वर्णित जीवात्माओं का अन्तर्यामी के रूप में सर्वदा एकरसतया होने से नित्य है । एवं हे अर्जुन ! मैं इससे पूर्वकाल में कदापि नहीं था ऐसा नहीं किन्तु था ही एवं तू पूर्व काल में नहीं था ऐसा नहीं किन्तु था ही तथैव ये आगे दिखाई दे रहे राजा लोग भी इस काल से पूर्व में नही थे ऐसा नहीं किन्तु थे ही वर्तमान में तो हम सभी हैं ही भविष्य में भी हम तुम एवं ये राजा लोग भी होंगे ही नहीं होंगे ऐसी बात नहीं इत्यादि श्रुति एवं स्मृति का विरोध अवश्य होगा । तथैव जीवात्माओं को एक मानने पर या जीवात्मा एक हो तो एक ही समय में एक सुखी तथा दूसरा दुःखी एवं कोई बद्ध और

अत एवोक्तमानन्दभाष्यकारैर्भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्ययतिसार्वभौमैर्गीताभाष्ये "किञ्चात्मनांभेदाभावे गुरुशिष्यव्यवस्थाभङ्गोऽपिस्यात् । तदेवं शिष्यतया कञ्चनशिक्षणीयमुपलभ्यानुपलभ्यतया वोपदिशत्याचार्यः ? आद्ये स्वस्माद् भिन्नमभिन्नं वा ? प्रथमे सत्यमसत्यं वा ? नाद्योऽपसिद्धान्तात् । अन्ते तु तस्यमिथ्यात्वेनोपलम्भे

मुक्त तथा कोई रोगी तो कोई स्वस्थ इत्यादि परस्पर विरोधि व्यवस्था नहीं होती यह सब सर्वानुभूत है अतः यह सुतरांसिद्ध है कि जीव वर्ग परस्पर में भिन्न एवं अनन्त हैं ॥३८॥

जीवात्मा परस्पर में भिन्न भिन्न तथा अनन्त हैं इस विषय को आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी यति सार्वभौमने गीता के आनन्दभाष्य में प्रति पादन किया है—और भी देखिये यदि आत्मा का अभेद माने ईश्वर एवं जीव में तथा जीव में परस्पर भेद को न माने तब तो गुरु शिष्य की जो व्यवस्था है उसका भी भंग हो जायगा । वह इस प्रकार होता है शिष्य रूप से किसी शिक्षणीय व्यक्ति को प्राप्त करके अथवा प्राप्त किये विना ही आचार्य उसे उपदेश देते हैं ? उपदेश समुपस्थित जिज्ञासु को लक्षकर के ही होता है ऐसी लोकस्थिति है । इससे मैं पूछता हूं कि शिक्षणीय व्यक्ति को प्राप्त करके उपदेश देते हैं इस प्रथम पक्ष में पूछता हूं कि जो यह आचार्य शिक्षणीय व्यक्ति को प्राप्त करके उपदेश देते हैं तो वह शिक्षणीय व्यक्ति

तस्मा उपदेशासम्भवः । सत्यत्वेनोपलम्भेतु भ्रान्तत्वेनाचार्यत्वहानिराचार्यस्य । अभिन्नत्वपक्षे कथमुपदेशः । अनुपलभ्येति पक्षे तु कस्मा उपदिशति ? एवमात्मभेदानभ्युपगमे बद्धमुक्तव्यवस्थाभङ्गश्च भवेत् (गीतायाः आनन्द भाष्यम् २।१२) इति ॥३९॥

आचार्य से भिन्न है अथवा अभिन्न है ? इस में जो प्रथम पक्ष है स्वभिन्नत्व उसमें भी स्वभिन्न जो शिष्य है वह सत्य है अथवा असत्य है ? उसमें यदि सत्य कहें तो अपसिद्धान्त होता है क्योंकि आपका तो सिद्धान्त है कि आत्म भेद असत्य है। यदि असत्यरूप द्वितीय पक्षमानें तब तो वह शिष्य मिथ्यात्व रूप से उपलब्ध होने से उसे उपदेश देना असम्भव है, यदि सत्यरूप से उसे उपदेष्टव्य तया आचार्य जानता है ऐसा कहें तब तो आचार्य के भ्रान्त होने से उस आचार्य में आचार्यत्व की हानी होगी । अभिन्न पक्ष को माने तब उपदेश किस प्रकार से होगा ? अनुलभ्य पक्ष में तो उपदेश सर्वथा असंभावित है जब कोई शिष्य ही नहीं मिला तो उपदेश किसे किया जायगा ? इसलिये आपका अभेद पक्ष युक्त नहीं है भेद पक्ष ही सर्व शास्त्र संमत है । एवं आत्मा का भेद नहीं मानने पर बन्ध मुक्त व्यवस्था का भी भंग रूप दोष होगा तथाहि यदि आत्मा का परस्पर भेद नहीं माने तब श्रीशुकादि ऋषि मुक्त हुये हमलोग बद्ध हैं इस प्रकार की जो व्यवस्था है उसकी उपपत्ति कैसे होगी ? ॥३९॥

श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायां श्रीश्रियानन्दार्यैरप्युक्तम्—

"एककाले सुखी चैको दुःखी चान्योऽवलोक्यते।
विज्ञैः परस्परं भेदश्चात्मनां मन्यते ततः ॥५-२१॥
सुखीदुःखीतिभेदो नन्वन्तः करणभेदतः।
मैवं कुतो यतश्चैवं सौभर्यादौ कथं नहि ॥५-२२॥

जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्यजी ने भी अपनी श्रौतप्रमेय-चन्द्रिका नामक दिव्य प्रबन्ध में इसी तथ्य को कहा है—एक ही काल में एक जीव सुखी दूसरा दुःखी देखा जाता है इसलिये ज्ञानी लोग जीवों को परस्पर भिन्न भिन्न मानते हैं। कोई कोई तो कहते हैं कि जीवात्मा तो एक ही है किन्तु अन्तः करण के भेद से सुखी दुःखी राव रंक आदि भेद हो जाते हैं इस पर आचार्य पाद कहते हैं कि उन लोगों का उक्त कथन उचित नहीं है क्योंकि यदि अन्तः करण के भेद से ही जीवात्मा के भेद होते है तो अन्तः करण के भेद से सौभरी आदि योगियों में उक्त भेद क्यों नहीं हुए ? अतः अन्तः करण के भेदसे सुखी दुःखी के भेद होते है' यह कथन असत्य है। मलूक शतक में लिखा है-कोई कहते आत्मा सव देहन महं एक भिन्न भिन्न सव देह महं कहत 'मलूक' अनेक ॥३३॥ कह 'मलूक' सव देह के जीव होयं यदि एक। एक कालमहं दुःख इक सुख भोगैं किमि एक ॥३४॥ देह भेद से जो कहहुं सुखी दुःखी का भेद। क्यों न 'मलूका' सौभरिहिं सुख दुख तनु के भेद

मुक्तामुक्तत्वभावश्च बोध्यबोधकता तथा ।
मृतामृतव्यवस्था च ह्यात्मैक्येसम्भवेन्नहि ॥५-२३॥
नन्वात्मनामभेदोऽस्ति भोक्ता भोग्यमिति श्रुतेः ।
मैवं यतः प्रकारैक्याज्जीवानां च तथा श्रुतिः ।२४।इति।४०
आहुश्च नवरत्नीकाराः श्रीश्यामानन्दाचार्याः-
अहं देहेन्द्रियादिभ्यः प्राणेभ्यो ज्ञानतोऽपि च ।

॥३५॥ जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्यजी एकात्मवाद में दोष देते हैं कि आत्मा को एक मानने में कोई मुक्त हैं और कोई बद्ध हैं कोई बोध पाने योग्य शिष्यादि हैं तो कोई बोध दाता आचार्य आदि हैं, कोई मर गये हैं और कोई जीवित हैं इत्यादि व्यवस्था भी नहीं बनेगी । कोई कोई कहते हैं कि 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा' इस श्रुति में भोक्तृ शब्द जीव वाचक है वह एक वचनान्त है इससे विदित होता है कि सभी जीवों में अभेद है अर्थात् जीवात्मा एक ही हैं अनेक नहीं इस पर जगद्गुरु जी कहते हैं उक्त कथन ठीक नहीं है क्योंकि सभी जीवों के अणुत्व, चेतनत्व अजडत्व, प्रत्यक्त्व, कर्तृत्व भोक्तृत्व तथा श्रीराम शेषत्वआदि प्रकार-विशेषण एक समान हैं इसी लिये श्रुति में समस्त जीवों को एक वचनान्त रूप से कहा है न कि जीवात्मा एकत्व होने से ॥४०॥

नवरत्नीकार जगद्गुरु श्रीश्यामानन्दाचार्यजी ने भी ऐसा ही कहा है-मैं देह इन्द्रिय प्राण एवं ज्ञान से भिन्न हूं तथा

अन्यात्मभ्यश्च रामाद्धि भिन्नो रामतनुस्तथा।'' इति ।

अतश्चैकजीववादःश्रुतिविरुद्धोयुक्तिविरुद्धश्चास्तीतिबोद्ध्यम्॥४१

☫ बद्धजीवाः ☫

जीवास्त्रिविधा बद्धमुक्तनित्यभेदात् । उक्तञ्चेत्थमेव-भाष्ये "एतेन जीवानां बद्ध मुक्तनित्यभेदेन त्रैविध्यमपि दर्शितं भवतीत्यन्यत्र विस्तरः (श्रीरामानन्दभाष्यम् १।१।१४) इति ॥४२॥

तत्रानादिकालीनस्वनियामकपुण्यपापात्मककर्मानुगुण-जनिनिधनत्वादिधर्ममापन्ना आब्रह्मकीटादयो जीवा बद्धाः।

आत्मा से—अन्य जीव से भी भिन्न हूं और सर्व नियन्ता श्रीरामजी से भिन्न एवं उनका शरीर रूप हूं, इसलिये एकजीव वाद श्रुति स्मृति एवं युक्ति विरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य है।४१।

बद्ध जीव मुक्त जीव एवं नित्य जीव के भेद से जीव तीन प्रकार के हैं । श्री आनन्दभाष्य में तीन प्रकार के जीवों का ही निर्वचन हुआ है-इस पूर्वोक्त विवेचन के द्वारा जीवात्माओं का बद्ध मुक्त एवं नित्य भेद से तीन प्रकार भी नियत रूप से प्रदर्शित हो जाता है इस विषय को अन्यत्र विस्तार किया जा चुका है ॥४२॥

उन बद्ध मुक्त नित्य जीवों में से अनादि कालसे अपने नियामक पुण्य एवं पापात्मक कर्मों का अनुसरण कर अच्छी तथा

भगवान् श्रीरामोऽपि जीवस्य प्राक्तनं कर्मानुसृत्यैव फलप्रदोऽतो न तत्र स्वातन्त्र्यप्रयुक्तवैषम्यनैर्घृण्यदोषः ॥४३॥

अत एवोक्तमाचार्यशिरोमणिश्रीश्रुतानन्दाचार्यैः श्रौतसिद्धान्तबिन्दौ—

विकारश्चरामो दयाब्धिस्तथात्वे
दयाशून्यतां पक्षपातं च नैति ।

स्वरात्र योनियों में जन्म एवं मृत्यु प्रभृति धर्मोंको प्राप्त करने वाले ब्रह्मा से कीट पर्यन्त सभी बद्ध कहे जाते है । सर्वेश्वर श्रीरामजी भी जीव के पूर्व कृत कर्मके अनुसार ही कर्मानुरूप फल को प्रदान करते है इसलिये श्रीरामजी स्वतन्त्र रूप से जीव को विषम फल देते हैं अतः विषम व्यवहार तथा निघृणता दोष के भागी ये होते हैं यों कहना उचित नहीं है ॥४३॥

इसीलिये आचार्य शिरोमणि श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी ने श्रौतसिद्धान्तबिन्दु नामक प्रबन्ध में कहा है—सृष्टि में सर्वेश्वर श्रीरामजी को अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानने पर भगवान में विकारिता दोष की आशंका ठीक नहीं है क्योंकि उनके प्रकार यानी विशेषण भूत चित् जीव एवं अचित् प्रकृति में ही विकार होता है विशेष्य रूप श्रीरामजी में विकार नहीं होता है एवं चित्र गरीब अमीर ऊच नीच सुखी दुखी देव दानव मानव पशु पक्षी कीट पतंग प्रभृति अनेक प्रकार के सृष्टि में प्राणियों

प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ
च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्य कर्म" इति ॥४४॥

卐 मुक्तजीवाः 卐

अनन्तजन्मोपार्जितपुण्योदयेन सत्त्वोद्रेकात्सद्गुरुमुपसद्य ततोऽनन्त ब्रह्माण्डनायकनिखिलदोषप्रत्यनीकानन्तकल्याण-सागरं परं ब्रह्म भगवन्तं श्रीराममवबुध्य तद्भक्तिप्रपत्तिभ्यां बन्धकारणभूतानि कर्माणि विनाश्य कर्मोपार्जितदेहं परित्यज्य दिव्ये श्रीसाकेतधामनि भगवत्सायुज्यमवाप्ता जीवा मुक्ताः ॥४५॥

का प्राच्य पूर्वभव कर्म ही कारण होता है इसीलिये दया के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी दया शून्य एवं पक्षपात दोषके भागी नहीं होते हैं ॥४४॥

पीछले अनन्त जन्मो से उपार्जित पुण्यों के उदय हो जाने से सत्व गुण के उद्रेक प्रवलता जनित सत्प्रेरणा से शास्त्र लक्षणविहीत सदाचरणशील सद्गुरुदेव को प्राप्तकर यानी सद्गुरुदेव से यथाशास्त्र तारक महामन्त्र श्रीराममन्त्र राज को प्राप्त कर उन्ही सद्गुरुदेवजी के सदुपदेश से अनन्त ब्रह्माण्ड के नायक सम्पूर्ण दोषों के प्रतिभट सभी दोषों के नाशक एवं अनन्त कल्याण गुणों के सम्राट् परब्रह्म भगवान श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूपको यथार्थ रूप से जानकर सर्वेश्वर श्रीरामजी की भक्ति एवं प्रपति रूप साधन से जीवों के बन्धन में कारण भूत सभी

भक्तिः

भक्तिश्च ध्रुवा स्मृतिः । उक्तञ्च महर्षिश्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायनोक्तसाधन सप्तकस्य पद्यात्मिकायां साधनदी-

कर्मों को नाशकर के अपने कर्मों से प्राप्त देह को परित्याग कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर दिव्य श्रीसाकेत धाम में सर्वेश्वर श्रीराम चन्द्रजी के साथ उनके नित्य कैंकर्य रूप समवास प्राप्त जीव मुक्तजीव है ॥४५॥

ध्रुव-निश्चल किसी भी अवस्था में विचलित नहोने वाली श्रीरामचन्द्रजी की स्मृति स्मरण को भक्ति कहते हैं । भक्ति तत्वको स्पष्ट करते हुये महर्षि श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन से उपदिष्ट साधन सप्तक के पद्यात्मक टीका साधनदीपिका में श्री-बोधायनजी के श्री चरणरज सेवक शिष्य आचार्य प्रवर श्रीगङ्गा-धराचार्यजी ने कहा है पर ब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य अव्य भिचारिणी भक्ति से ही सायुज्य मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । वह ध्रुव स्मृति से ही प्राप्त होती है यानीं ध्रुव स्मृति निश्चल विच्छेद रहित सतत स्मरण ही भक्ति है । वह विवेक विमोक अभ्यास क्रिया कल्याण अनवसाद तथा अनुद्धर्ष रूप सात साधनों से उत्पन्न होतीं हैं ।

विवेकः=जात्याश्रयनिमित्तादुष्टादन्नात्कायशुद्धिः । जाति आश्रय एवं निमित्त इन तीन प्रकार के अन्न दोषों से अदुष्ट अन्न से देह की शुद्धि को विवेक कहते हैं । कलंज गाजर आदि दुष्ट अन्न है । पतित हत्यारे आदि के अन्न को आश्रय

पिकाख्यायां व्याख्यायां श्रीबोधायनचरणचञ्चरीकैराचार्य सुरेन्द्रैः श्रीगङ्गाधराचार्यैः-

दुष्ट कहा जाता है । जूठे विष मिला केश पतित एवं सड़े गले प्रभृति अन्न को निमित्त दुष्ट कहा जाता है । यह भक्ति का प्रथम साधन है विमोक:=विमोक: कामानभिष्वङ्गः । शब्द स्पर्श रूप रस एवं गन्ध को काम कहते है उन शब्दादि पांचों विषयों में अनादर को विमोक कहते हैं यह भक्ति का दूसरा साधन है । अभ्यास:=आरम्भणसंशीलनं पुनः पुनरभ्यासः । शुभाश्रय सर्वेश्वर श्रीरामजी का पुनः पुनः संशीलन यानी अनुकूल रूप से सतत चिन्तन को अभ्यास कहते हैं । यह भक्ति का तीसरा साधन है । क्रिया=पञ्चमहायज्ञाद्यनुष्ठानं शक्तितः क्रिया । पंचमहायज्ञों का यथा शक्ति अनुष्ठान को क्रिया कहते हैं यानी चारों आश्रमों में स्थित सभी साधकों के लिये यह सामान्य विधान है कि स्व स्व आश्रम हेतु नियत कर्मों का यथानियम यथा शक्ति पालन करे यही क्रिया है जो भक्तिका साधिका होकर पर पद गमनेच्छुओं की परमहित कारिणी है । कल्याण=सत्यार्जवदयादानाहिंसाऽनभिध्या: कल्याणानि । सत्य आर्जव अकुटिलता दया दान अहिंसा एवं अन्य प्रतिकूलता की चिन्ता नहीं करना कल्याण कहलाते हैं । अनबसाद:=देशकालवैगुण्याच्छोक वस्त्वाद्यनुस्मृतेश्चतज्जं दैन्यमभास्वभास्वरत्वं मनसोऽवसादः । देश एवं कालकी विषमता के कारण भूतकाल के पुत्र

"रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते ।
भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तकात्" इति।४६।

भक्तिमधिकृत्याभिहितं चापरबोधायनाचार्य जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यवेदांत विद्यानिधिभिः प्रमिताक्षराकारैर्योगपञ्चके—

मरणादि शोकवस्तु एवं आनेवाले भय के चिन्तन से मनमें अभीष्ट कार्य करने की असमर्थता रूप जो दीनता होती है उससे उत्पन्न होने वाली दीनता को अवसाद कहते हैं । अवदास के अभाव को अनवसाद कहते हैं यह छठा साधन है । अनुद्धर्षः= तद्विपर्ययजा तुष्टिरुद्धर्षः । देश एवं काल के अनुकूल होने से अतीत पुत्र जन्मादि प्रियवस्तु और आने वाले सुख के चिन्तन से उत्पन्न होने वाले अति संतोष को उद्धर्ष कहते हैं यह उद्धर्ष भक्ति का विरोधि है, इस अति सन्तोष के अभाव को अनुद्धर्ष कहते हैं यह भक्ति का सातवां साधन है ।।४६।।

वेदान्त विद्यानिधि अपर बोधायनाचार्य जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी ने भी योगपञ्चक नामक अपने प्रबन्ध में भक्ति तत्त्व के विषय में कहा है—

अतिशय प्रेम पूर्वक तेल के धार के समान अटूट सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण को साधनारूप ऐश्वर्यशाली भक्ति तत्त्वज्ञ श्रीवैष्णवाचार्यों ने भक्तियोग के रूप में स्वीकार किया है ।।३२।। यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारण ध्यान

"श्रीरामस्यानवच्छिन्नं स्मरणं प्रीतिपूर्वकम् ।
श्रीमद्भिर्वैष्णवाचार्यैर्भक्तियोगतया मतम् ॥३२॥
अङ्गमष्टाङ्गयोगोऽङ्गीभक्तियोगः प्रकीर्तितः ।
लभ्यते भगवान् रामो भक्तियोगेन नान्यथा ॥३३॥
भक्तिर्बोधायनप्रोक्तै विवेकादिकसाधनैः ।
ध्यानध्रुवस्मृतीत्यादि शब्दवाच्या प्रजायते ॥३४॥
संसारिता मताऽभक्त्या भक्त्या मुक्तिरुदीरिता ।
आमृत्युसमयं भक्तेरावृत्तिश्च मता श्रुतौ ॥३५॥

एवं समाधि रूप आठ अंग वाली योग साधना भक्तियोग का अङ्ग है अङ्गी के रूपमें शास्त्रकारों ने भक्ति योगका वर्णन किया है, सर्वेश श्रीरामजी भक्तिसे प्राप्त होते हैं अन्य साधनोंसे नहीं ।३३। वह भक्ति महर्षि श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन से निरूपित विवेक विमोक अभ्यास क्रिया कल्याण अनवसाद एवं अनुद्धर्ष रूप सात साधनों से जायमान ध्रुवा स्मृति स्वरूप ध्यान से उत्पन्न होती है ॥३४॥ अभक्ति यानी श्रीरामजी में भक्ति रहित व्यक्ति को संसारिना अर्थात् बन्धन होता है सर्वेश्वर की भक्ति सम्पन्न मानव को सायुज्य मुक्ति होती है ऐसा शास्त्रकारों ने माना है। भक्ति की साधना अपनी मृत्युपर्यन्त वार वार आवृत्ति के रूप में साधक को करते रहना पडता है ऐसा श्रुति में निरूपण है ॥३६॥ अपने प्रारब्ध पूर्व जन्मकृत कर्मानुसार प्राप्त शरीर के द्वारा कर्म फल भोगने के वाद अर्चिरादि मार्ग

प्रारब्धान्ते मता भक्तिर्मुक्तिदा चार्चिरादिना ।
अङ्गिनी च मता भक्तिरङ्गे च ज्ञानकर्मणी ।।३६।।
श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।३७।।
एवं महापुराणे श्रीभागवते हि मुक्तिदाः ।
भक्तेश्च नवधाभेदाः प्रह्लादेन प्रकीर्तिताः ।।३८।।
एभिराराधितो रामो भक्ते परं प्रसीदति ।
योगक्षेमं वहंल्लोके चान्ते मुक्तिं प्रयच्छति ।।३९।।

द्वारा भक्ति साधक जीव को मुक्ति देती है ऐसा शास्त्रकारों ने माना है । सायुज्य मुक्ति प्रदा भक्ति अङ्गिनी यानी प्रधान है ज्ञान एवं कर्म अङ्ग यानी गौण हैं अर्थात् मुक्ति का प्रधान कारण भक्ति है ज्ञान एवं कर्म भक्ति के सहायक हैं इसे यों समझेकि ज्ञान कर्म सवलित भक्ति से ही सायुज्य मुक्ति होती है केवल ज्ञान या केवल कर्म से नहीं ।।३६।। सर्व व्यापक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के यश का श्रवण श्रीरामनाम का कीर्तन दिव्य स्वरूप का स्मरण श्रीचरण कमलों का सेवन पूजन साष्टांग वन्दन सखाभाव दासभावसे सेवा एवं आत्म निवेदन इस प्रकार से नव प्रकार के भक्ति का भेद महापुराण श्रीभागवत में प्रह्लादजी ने निरुपित किया है जो मुक्ति को देने वाली हैं ।।३७–३८।। ऊपर वर्णित किसीभी भक्ति के रूप से समाराधित श्रीरामचन्द्रजी आराधक भक्त पर बहुत प्रसन्न होते हैं आराधक

घृतं जला त्तथा तैलं सिकतातश्च निःसरेत् ।
तथापि भगवद्भक्तिं विना मुक्तेर्न सम्भवः ॥४०॥
पूर्वाघनाशिनी चाथ पराघश्लेषवर्जिनी ।
भक्तिरेव ततः सैव पुंसां संसारनाशिनी ॥४१॥
इति ॥४७॥

आनन्दभाष्यकारैराचार्यसार्वभौमैर्भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैरप्यभिहितमेवमेव श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे—

के जीवन कालपर्यन्त लोक में योग क्षेम बहनकर यानी साधक के वास्ते अप्राप्त वस्तु को प्राप्त कराकर एवं प्राप्त वस्तु का संरक्षण करके प्रारब्ध शरीरान्त में सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं ॥३८॥ कथंचित जल के मथने से घी निकल जाय या सिकता बालूके पेलने से तेल निकल जाय पर सर्वेश्वर श्रीरामजी की भक्ति के विना कथमपि मुक्ति पाना संभव नहीं है "वारि मथे घृत होइ बरु सिकताते बरू तेल । विन हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धांत अपेल" इस प्रकार कवि सम्राट् श्रीतुलसीदासजी ने इसी वात की पुष्टी की है ॥४०॥ सर्वेश श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति साधक से पूर्व पहले किये गये पापोंका नाश करने वाली है एवं पीछे होने वाले पापों के संसर्ग को भी दूर करने वाली है अतः साधक मनुष्य के संसार बन्धन को नाश करने वाली भक्ति ही है अन्य नहीं इसलिये निः छल भावसे भक्तिका अवलम्बन करना चाहिये मुक्तिकी इच्छा वालों को ॥४१॥४७॥

"सा तैलधारा समनित्यसंस्मृतेः
सन्तानरूपेशि परानुरक्तिः ।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गाः"
४।१३ इति ।

श्रीरामानन्दभाष्येऽपि "सा च भक्तिः परमप्रेयो भगवदितरवैतृष्ण्यपूर्वक परमपुरुषानुरागरूपो ज्ञानविशेष एव (आ०भा० १।१।१) इति ॥४८॥

भक्ति तत्त्व के विषय में आनन्दभाष्यकार आचार्य सार्व भौम जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने भी श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में ऐसा ही कहा है—वह भक्ति विवेक विमोक अभ्यास क्रिया कल्याण अनवसाद तथा अनुद्धर्ष इन सात प्रकार के कारणों से उत्पन्न होत्ती है जिसके यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारण ध्यान एवं समाधि ये आठ प्रकार के समुचित रूप से वोध करानेवाले अंग हैं, तैलधारा के सदृश नित्य संस्मृति यानी अविच्छिन्न स्मरण रूप प्रत्यक्षाकार ज्ञान से जायमान सर्वेश्व र श्रीरामजी में जो परम अनुराग है वही अनन्या भक्ति है ऐसी अनन्या भक्ति से ही सामुज्य मुक्ति होती है अन्यों से नहीं । श्रीरामानन्दभाष्य में भी इसी प्रकार का निरूपण है— सायुज्य मुक्तिको देने वाली वह भक्ति परम प्रेम स्वरूपा भग- वान् श्रीरामचन्द्रजी से इतर भिन्न सभी पदार्थों में विराग पूर्वक परम पुरुष श्रीरामचन्द्रजी में विशेष अनुराग रूप ज्ञान विशेष ही है अन्य नहीं (आ.भा. १।१।१) ॥४८॥

ॐ प्रपत्तिः ॐ

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः (गी० १८।६६) इत्येतस्यश्लोकस्यानन्दभाष्ये भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैः प्रपत्तेः स्वरूपमपि निरूपितम् ।।४९।।

तथाहि "सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेर्वात्सल्यजलधेः स्वभाव एवैष यत् स प्रार्थित एव सर्वं करोतीत्युपायत्व प्रार्थनाऽवश्यं कर्तव्येत्यपि ध्येयम् सेयमुपायत्व प्रार्थनैव प्रपत्तिः ।......।।५०।।

भगवान् श्रीकृष्णजी श्रीअर्जुनजी से कहते हैं तुम भगवत्प्राप्ति में प्रतिबन्धकीभूत पापों को दूर करने वाले कृच्छ्र चान्द्रायणादि सभी धर्मों का त्याग कर एक मात्र मेरे शरण में हो जाओ मैं तुम्हे सभी पापों से मुक्त कर दुंगा चिन्ता मत कर, इस गीता श्लोक के आनन्दभाष्य में भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने प्रपत्ति के स्वरूपका निरूपण किया है ।४९।

तथाहि वह इस प्रकार है—सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् वात्सल्य के जलधि स्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा स्वभाव ही है कि जो प्रार्थना करने पर ही सभी अभिलषित वस्तुको सम्पन्न कर देते हैं अतः उसी तत्त्वकी प्रार्थना अवश्य कर्तव्य है ऐसा समझना चाहिये । सर्वेश्वर श्रीरामजी से उपाय की जो प्रार्थना है वही प्रपत्ति है ।।५०।।

प्रार्थनांशेन शरणागतिपदवाच्य आत्मनिक्षेपांशेन न्यासपदवाच्यश्च प्रपत्तियोग एव। आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रतिकूल्यस्य वर्जनं रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं कार्पण्यञ्चेतीमानि प्रपत्तियोगस्य पञ्चाङ्गानि ॥५१॥

तथा हि शास्त्रम्

"आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रतिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागागतिः।
(अहिर्बुध्निसंहिता ३७।२८ इति ॥५२॥

प्रार्थना अंश से गृहीत शरणागति पद वाच्य प्रपत्ति योग है एवं आत्मनिक्षेप अंश गृहित न्यास पद वाच्य भी प्रपत्ति योग ही है। अनुकूलता का संकल्प प्रतिकूलता का वर्जन निराकरण त्याग सर्वेश श्रीराम सर्वावस्था में सर्वत्र मेरी रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास तथा गोप्तृत्व का वरण और कार्पण्य ये पाँच प्रपत्ति योग के अंग हैं ॥५१॥

पञ्चरात्र की अहिर्वुध्नि नामक संहिता में भी ऐसा हा कहा है–आनुकूल्य का संकल्प प्रातिकूल्य का बर्जन श्रीराम मेरी रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास गोप्तृत्व वरण आत्म निक्षेप एवं कार्पण्य ये छ प्रकार की शरणागति होती है अ०स० ३७।२८॥५२॥

पञ्चापीमानि प्रपत्त्यङ्गानि बोधायनवृत्तिकृता भगवता श्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायनेन श्रीपुरुषोत्तमषट्केविहितानि तथाहि

राम: दीनोऽनुकूलोऽहं विश्वस्तोऽप्रातिकूल्यवान् ।
त्वयि न्यस्यामि चात्मानं पाहि मां पुरुषोत्तम ?
(गीताया आनन्दभाष्यम् १८।६६) ।।५३।।

प्रपत्तिं समधिकृत्य व्याहृतं चापरबोधायनाचार्यैर्जगद्गुरुभि: श्रीदेवानन्दाचार्यैः वेदान्तविद्यानिधिभि: प्रमिताक्षराकारैर्योगपञ्चके—

इन पांचों प्रकार की प्रपत्ति के अंगों का वर्णन बोधायन वृत्तिकार भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन ने पुरुषोत्तम प्रपत्तिषट्क नामक प्रबन्ध में किया है । जैसे कि— हे श्रीरामजी ? दया के सागर प्रभु मैं अति दीन व्यक्ति हूँ आप के अनुकूल हूँ आप में मेरा पूरा विश्वासहै कि आप मेरा अवश्य रक्षण करेंगे मैं कभी भी आपके प्रतिकूल नहीं हूँ आप में अपनी आत्मा को समर्पण करता हूँ करुणा के सागर हे पुरुषोत्तम ? मेरी रक्षा करें ।।५३।।

प्रकृत प्रपत्तियोग के विषय को लक्ष्य में रखकर प्रमिताक्षरा वृत्तिकार अपर बोधायनाचार्य वेदान्त विद्यानिधि जगद्गुरु श्रीदेवा-नन्दाचार्यजी ने योग पंचक में कहा है—

अपने से अभिन्न स्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी एवं सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में अपना एवं आत्मीयजन

"श्रीरामाय ससीताय स्वात्मस्वीयानुबन्धिनाम् ।
रक्षाभारार्पणं पुंसो न्यासयोगः प्रकीर्त्तितः ॥४२॥
आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
विश्वासोऽकिञ्चनत्वं च गोप्तृत्ववरणं तथा ॥४३॥
आचार्यैरुक्तमेतद्धि न्यासयोगाङ्गपञ्चकम् ।
अङ्गपुष्टौ प्रजातायामङ्गिपुष्टिर्मता ध्रुवा ॥४४॥
श्रीमद्रामानुकूलोऽहं भविष्याम्यद्यतः खलु ।
इत्यानुकूल्यसङ्कल्पो न्यासयोगाङ्गमादिमम् ॥४५॥

और सम्बन्धीजनों का संरक्षण भरण एवं पोषण सम्बन्धी समस्त भार का समर्पण को न्यास योग कहा गया है ॥४२॥ अनुकूलता का संकल्प प्रतिकूलता का त्यागपूर्ण विश्वास अकिंचनता एवं गोप्तृता का वरण इन पांचो को श्रीबोधायनादि आचार्यों ने न्यासयोग के अंग के रूप में वर्णन किया है अंग के पुष्ट हो जाने पर अंगी की पुष्टि निश्चित रूप से हो जाती है ॥४३-४४॥ मैं आज से निश्चित रूप से सर्वेश्वर श्रीरामजी का अनुकूल होउगा इसप्रकार का अनुकूलता के संकल्प को न्यास योग का प्रथम अंग कहा गया है ॥४५॥ आज से मैं श्रीरामजी का प्रतिकूल नहीं हुंगा इस प्रकार के प्रतिकूलता के त्याग रूप प्रतिज्ञा को न्यास योग का द्वितीय अंग कहते हैं ॥४६॥ श्रीजानकीनाथ श्रीरामजी मेरी रक्षा अवश्य करेंगे इस प्रकार के विश्वास को न्यास योग का तृतीय अंग कहा गया

श्रीरामप्रतिकूलोऽहं भविष्याम्यद्यतो नहि ।
एतन्न्यासद्वितीयाङ्गं प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ॥४६॥
अवश्यं जानकीनाथो मम रक्षां विधास्यति ।
विश्वासनामकं चैतन्न्यासाङ्गं हि तृतीयकम् ॥४७॥
त्वामेव हि प्रपन्नं त्वं रक्ष राम ! शरण्य माम् ।
एतन्न्यासचतुर्थाङ्गं गोप्तृत्व वरणं मतम् ॥४८॥
प्रपन्नं साधनैर्हीनं मां पाहि रघुनन्दन ! ।
न्यासस्य पञ्चमं चाङ्गमाकिञ्चन्यमिति स्मृतम् ॥४९॥
मानसादि विभेदेन न्यासोऽयं त्रिविधो मतः ।
न्यासस्यैवापरे नाम्नी प्रपत्तिशरणागती ॥५०॥

है ॥४७॥ शरणागत रक्षक श्रीरामजी आपके शरण में आये मेरी रक्षा आप करें इस प्रकार गोप्तृत्व स्वीकार को न्यास योग का चौथा अंग कहा गया है ॥४८॥ हे श्रीरघुनन्दनजी ! अन्य साधनों से रहित आपके शरण में आया मेरी रक्षा करें इस प्रकार की याञ्चा को अकिंचन रूप न्यास योग का पांचवां अंग माना गया है ॥४९॥ कायिक वाचिक एवं मानसिक भेद से यह न्यास योग तीन प्रकार का माना गया है, इसी न्यास योग के ही प्रपत्ति एवं शरणागति दूसरे नाम हैं ॥५०॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी ने "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम" इसप्रकार से प्रपन्न व्यक्ति को सभीभूत प्राणी वर्ग से सर्वतोभाव से अभय

प्रतिज्ञातं च रामेण प्रपत्त्या सर्वतोऽभयम् ।
राम एव प्रपद्यो यद् रामो द्विर्नाभिभाषते ॥५१॥
अयं प्रपत्तियोगोहि प्रारब्धस्यापि नाशकः ।
अस्य प्रपत्तियोगस्याधिकारः सर्वदेहिनाम् ॥५२॥
इति ॥५३॥

मुक्तावस्थायां "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" इति श्रुतिप्रतिपादितपरम साम्यापन्नोऽपि मुक्तजीवः सर्वेश्वरो न भवति साम्यस्य भेदघटितत्वादत एव सूचितं ब्रह्ममीमांसायां

कर देने की प्रतिज्ञा की है इसलिये श्रीरामजी की प्रपत्ति स्वीकार करना चाहिये अन्यों की नहीं क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी दुबारा नहीं बोलते हैं यानी वे असत्य नहीं बोलते हैं जो कहते हैं उसे पूर्ण करके बता देते हैं श्रीविभीषणजी श्रीसुग्रीवजी आदि अनेक उदाहरण है ॥५१॥ यह प्रपत्तियोग श्रीराम प्रपन्न जीवों के प्रारब्ध कर्म का भी नाश करता है इस प्रपत्तियोग में सभी मनुष्यों का अधिकार है किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है । भक्तों को प्रारब्ध कर्म का भोग करना ही पडता है प्रपन्नों को नहीं यही भक्त एवं प्रपन्न में अन्तर है ॥५२॥५३॥

जीवात्मा मुक्ति के अवस्था में भी निरंजन परम समता को प्राप्त कर लेता है, इस प्रकार श्रुति से प्रतिपादित परम समता को प्राप्त हो जाने पर भी मुक्त जीव सर्वेश्वर यानी ब्रह्म नहीं होता है क्योंकि साम्य जो होता है वह भेद घटित ही

भगवता बादरायणेन "जगद् व्यापार वर्जं प्रकरणादसन्नि-हितत्वाच्च (ब्र. सू. ४।४।१७) इति ॥५४॥

अभिहितञ्चैतस्य सूत्रस्यानन्दभाष्य आचार्यसार्वभौमै-र्भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैः "पूर्वं संकल्पमात्रेण मुक्तस्य सर्वकामावाप्तिरभिहिताऽनन्याधिपतित्वञ्चोक्तम् ।

होता है अभेद नहीं इसी तथ्य को प्रकट करने के लिये भगवान् श्रीबादरायणजी ने ब्रह्म मीमांसा में—प्रकरण एवं सन्निहित न होने से जगत के व्यापार को छोडकर मुक्त जीव ईश्वर के समान हो जाता है, इस प्रकार का सूत्र बनाया ॥५४॥

'जगद्व्यापार वर्जं' इस सूत्र के आनन्द भाष्य में आचार्य सार्वभौम भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने मुक्त जीव को ब्रह्म से भिन्न के रूप में ही प्रतिपादन किया है-इससे पूर्व प्रकरण में सत्य संकल्प मात्र के बल से मुक्त पुरुष को सर्व अभिलषित वस्तुओं की प्राप्ति होती है ऐसा कहा गया है । और मुक्त पुरुष अनन्याधिपति भी होता है-नहीं है अन्य कोई अधिपति शासक नियन्ता जिसका ऐसा वह मुक्त हो जाता है ऐसा भी पूर्व में कहा जा चुका है । इसके बाद यह विचार किया जाता है कि क्या मुक्त पुरुष को स्वकीय संकल्प मात्र से सर्वेश्वरत्व भी प्राप्त हो जाता है, जिस तरह परम पुरुष नित्य सिद्ध परमात्मा में स्वाभाविक सर्वेश्वरत्व सर्वनियामकत्त्व जड चेतन जगदुत्पादकत्व स्थितिलय कर्तृत्व है उसी तरह मुक्त पुरुष में

तथा सतीदानीं विचार्यते किं मुक्तस्य संकल्पमात्रेण परम पुरुषस्येव सर्वेश्वरत्वमपि प्राप्यते आहोस्वित् सर्वकामप्राप्ति रूपमैश्वर्यमेवेति संशये सर्वजगतामीश्वरत्वमपि । कुतः ? मुक्तत्वादनन्याधिपतित्वेनाथात् सर्वाधिपतित्वोपपत्त्या परमेश्वरस्येव सर्वनियन्तृत्वोपपत्तेः । "निरञ्जनः परमंसाम्य

भी होता है अथवा सर्वकाम प्राप्तिरूप ऐश्वर्य मात्र की ही प्राप्ति होती है ऐसा संशय होता है ।

इसमें पूर्व पक्षवादी कहते हैं कि जड चेतन सूक्ष्म स्थूल सकल जगत का ईश्वरत्व भी मुक्त जीव को प्राप्त हो जाता है क्यों कि मुक्त तथा अनन्याधिपतित्व होने से उस मुक्त जीव में निरंकुश सर्वाधिपत्व की सिद्धि होती है इस लिये सकल स्थूल सूक्ष्मादि साधारण जगत् का नियन्तृत्व भी जीव में उपलब्ध होता है नित्य सिद्ध परमेश्वर की तरह । जो सांसारिक कर्म कृत सकल मल से रहित होता है वह मुक्त पुरुष परमेश्वर के परम समता को प्राप्त कर जाता है, इस श्रुति से यह सिद्ध होता है कि मुक्त परम समता को प्राप्त होता है ऐसा श्रुत होने से जगत् के सृष्टि स्थिति एवं संहार कर्तृत्व आदि जो परमात्मा का अनन्य साधारण गुण है एतादृश गुणकी प्राप्ति भी मुक्त पुरुष को हो जाता है तस्मात् मुक्त पुरुष भी जगदुत्सृष्ट्यादिकों का कर्ता होता है ।।

मुपैति इतिपरमपुरुष साम्यापत्तिश्रवणाज्जगत्सृष्टयादि कर्तृत्व मपि मुक्तस्य सम्भवतीति प्राप्तेऽभिधीयते जगद् व्यापार वर्ज्जमिति । जगद्व्यापारो जगदुत्पत्त्यादिकर्तृत्वं तच्चाशेष चेतनाचेतनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदनियमनं तद्वर्ज्जमविद्याति- रोधानराहित्यपूर्वक परब्रह्माऽनुभवरूपम् "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इतिश्रुत्यभिहितसङ्कल्प-

इस शंका के उत्तर में सूत्रकार कहते हैं—"जगद् व्यापर वर्जम्" इत्यादि । जगद् व्यापार अर्थात् सकल जगत् का उत्पत्ति स्थिति और लय कर्तृत्व रूप है यानी एतादृश जगत् कर्तृत्व जड चेतन जगत् का स्वरूपस्थिति प्रकृति का नियमनरूप है एतादृश जगत् व्यापार को छोडकर के अविद्या का जो तिरोधान तद् राहित्य पूर्वक परब्रह्म का अनुभव रूप जोकि—वह मुक्त पुरुष ब्रह्म के साथ सर्व काम को प्राप्त करता है, इस श्रुति से कथित सर्व काम प्राप्ति रूप ऐश्वर्य लक्षण फल युक्त को संकल्प द्वारा या कामना मात्र से प्राप्त होता है । अर्थात् जगद् व्यापार रहित अभिलषित सर्वकाम प्राप्ति रूप ऐश्वर्य संकल्प द्वारा मुक्त पुरुष को प्राप्त होता है यानी सीमित ऐश्वर्य प्राप्त होता है न तु परमेश्वर वत् सर्व जगत् का नियन्तृत्व जगदीश्वरत्व भी प्राप्त होता है । जगदीश्वरत्व धर्म तो परम पुरुष परमेश्वर श्रीराम का ही अनन्य साधारण गुण है । इस बात को आप किस तरह जानते हैं कि जगत् व्यापार वर्जित सकल कामावाप्ति

मात्रेण सर्वकामावाप्तिरूपं मुक्तस्यैश्वर्यमस्ति न तु जगदीश्वरत्वमपि, तत्तु परमपुरुषस्यासाधारणं कुतः ? प्रकरणात् । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म'' (तै० ३।१) इतिपरमात्मानमेव प्रकृत्याम्नातं न तु मुक्तात्मानम् । एवं ''तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत'' (छा० ६।२।३) इत्यादिप्रकरणान्तरेष्वपिज्ञेयम् । असन्निहितत्वाच्चापि मुक्तस्य । न हि जगन्नियमनादिषु मुक्तस्य

लक्षण ऐश्वर्य मात्र मुक्त पुरुष को प्राप्त होता है किन्तु सर्व जगदीश्वरत्व की प्राप्ति नहीं होती है ? इस शंका के उत्तर में कहते है—'प्रकरणात्' उत्पत्ति के प्रकरण से जानता हूं कि सर्व जगदीश्वरत्व परमात्मा श्रीरामजी में ही है मुक्त पुरुष में नहीं । प्रकरणयों है—जिस सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ सर्व नियामक श्रीरामजी से यह आकाशादिक भूत भौतिक सकल जगत् उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न होकर के स्थिर रहता है पालित होता तथा अन्त में उसी में संहार को प्राप्त कर जाता है हे शिष्यो तादृश महापुरुष की जिज्ञासा करो वही ब्रह्म सर्व नियन्ता श्रीराम है, इस श्रुति में परमात्मा को प्रकृत करके ही कथन किया है पर मुक्त आत्मा को प्रकृत कर के प्रतिपादन नहीं किया है इसी तरह उस ब्रह्म ने ईक्षण—संकल्प किया कि एक भी मैं अनेक रूप से हो जाऊं तब उसने तेज की सृष्टि की जल पृथ्वी भूत

सान्निध्यमप्यस्ति येन तस्याप्ययं व्यापारः स्यात्'' (आनन्द भाष्यम् ४।४।१७) इति तस्मान्मुक्तो जीवो ब्रह्मभिन्न एव न तु ब्रह्मस्वरूप इति बोध्यम् ॥५५॥

॥ नित्यमुक्तजीवाः ॥

"यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः" (पु. सू. १६) इत्यादिश्रुतिप्रतिपादिताः श्रीहनुमदादयो नित्यमुक्तास्तु भगवत्प्रतिकूलाचरणाभावात् कदाचिदपिसंसारंनाप्नुवन्ति

भौतिक पदार्थों का सर्जन किया, इत्यादि प्रकरणान्तर से भी इस बात को जानना चाहिये।

और इस प्रकरण में मुक्तात्मा का सन्निधान भी नहीं है अर्थात् मुक्तात्मा का उपस्थापक कोई भी पद नहीं है जो कि मुक्तात्मा का बोधक हो जगद् नियमनादिक प्रकरण में मुक्त पुरुषों का सांनिध्य भी नहीं है जिससे कि मुक्त पुरुष का भी जगत् नियमनादिक व्यापार को माना जाय अतः निरंकुश ऐश्वर्यशाली परमात्मा में ही जगत् व्यापारादि कार्य कर्तृत्व है ईश्वराधीन मुक्त जीव में नहीं। इसलिये मुक्त जीव ब्रह्म से भिन्न ही है ब्रह्म स्वरूप नहीं ऐसा जानना चाहिये ॥५५॥

जिस पर धाम दिव्य लोक श्रीसाकेत में पुरातन साध्य यानी देव योनी विशेष साध्य मान वाले देव अर्थात् सर्वदा ईश्वर स्तुति में संलग्न श्रीहनुमानजी प्रभृति नित्य जीव वर्ग समवस्थित हैं' इत्यादि श्रुति से प्रतिपादित श्रीहनुमान् आदि नित्य मुक्त जीव

नित्यमुक्तानामवतारास्तु भगवदिच्छया स्वेच्छया वा भवन्ति। भगवन्नित्येच्छया सनातनत्वेन व्यवस्थापितास्तेषामधिकारविशेषा इति ध्येयम् ।।५६।

उक्तं च जीवतत्त्वमधिकृत्याचार्यसार्वभौमैरानन्दभाष्यकारैर्भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैं वेंदान्तसारे-

हैं वे भगवान् के धर्म संबन्धि विधान के प्रतिकूल आचरण के न होने से कभी भी संसारिपना को प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसे नित्य मुक्त जीवों का अवतार आराध्य देव भगवान् श्रीरामजी की इच्छा से उनके अवतार लीला को सम्पादन करने के लिये होता है अथवा नित्य मुक्तों की ही इच्छानुसार भी होता है। वे भगवान् की जो नित्य इच्छा है संकल्प है उनके द्वारा सनातन रूप से ही व्यवस्थापित तत्तत् कार्य या स्थान विशेष में नियत रूप से अविकार आदि को प्रधानकर संस्थापित किये जाते हैं ऐसा जानना चाहिये ।।५६।।

आचार्य सार्वभौम आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जीने जीवतत्त्व के विषय में वेदान्त सार में कहा है-

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के शिष्यरत्न श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी ने शान्ति विनयादि शिष्यगुण से संपन्न होकर के भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज के समीप में आकर के सकल मनुष्य के कल्याण के लिये पूछा था कि हे भगवन् ! इस जगत् में ज्ञातव्य वस्तु क्या हैं। जिनको जान

"नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मो

लेने के बाद जिज्ञासु जीव सायुज्य पद को प्राप्त कर के कृतार्थ हो जाता है, एतादृश प्रथम प्रश्न को जानकर के आचार्य भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने कहा कि हे सुरसुरानन्द ! तुमसे पूछे गये प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि तत्व तीन प्रकार का होता हैं ऐसा शास्त्र में कहा गया हैं। उनमें प्रथम तत्व प्रकृति महत्तत्व औ: अहंकारादि महाभूत पर्यन्त अचित् पदार्थ है उनमें से प्रथम अचित् पदार्थ का विस्तारपूर्वक निर्वचन छठे श्लोक में किया गया है। उसके बाद उद्देश क्रम से आगत द्वितीय चित् पदार्थ का स्वरूप लक्षण आदि का प्रतिपादन करते हैं अचित पदार्थ का निरूपण करके तदन्तर अवसर प्राप्त चित् जीवस्वरूप के प्रतिपादन करने के लिये कहते है "नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजः" इत्यादि हे श्रीरघुपति सुमते सुरमुरानन्द ! यहां जीव के अन्तः करण में रहने वाले जो अविद्यादि दोष हैं उन दोषों को विनाश करने वाले जो भगवान् श्रीसीतानाथ हैं तादृश रघुपति पद वाच्य श्रीसीतानाथ के चरण कमल में शोभन समीचीन बुद्धि है जिनकी एतादृश भगवान के सेवक सुरसुरानन्द ! सुरिवर्य अर्थात नित्य मुक्तों से अथवा पण्डित श्रेष्ठ व्यक्तियो ने वक्ष्यमाण लक्षण से युक्त जीवों का स्वरूप कहा है वह मैं सुनाता हूं सावधान होकर के श्रवण करके उसका मनन करो क्योंकि "श्रोतव्यो मन्तव्यः" इत्यादि

भिन्नो बद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसौ नैयधा सूरिवर्यैः ।

श्रुति कहती है कि श्रवण करो तथा श्रवण करके उस श्रुत पदार्थ का मनन करो अर्थात् तर्कयुक्ति द्वारा उसका विचार करो, विचार करने के बाद विचारित पदार्थ का निदिध्यासन करो । अर्थात् वक्ष्यमाण विशेषण विशिष्ट जीव का स्वरूप कहा गया है उसका अनुशीलन करो । तथाहि—वह जीव कैसा है ! इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं नित्यः वह जीव नित्य है, सर्वदा एकरूप है सनातन तथा अनादिमध्यनिधन है । अर्थात् प्रागभाव का अप्रतियोगी होता हुआ ध्वंस का अप्रतियोगी है जो पदार्थ प्रागभाव तथा ध्वंस का प्रतियोगी होता है वह अनित्य कहलाता है जैसे घटपटादि उत्पादक कारण हो अर्थात् उत्पन्न हो उसका प्रागभाव होता है । घटो भविष्यति" घट होगा, चक्रमृत्तिकादि कारण के समवधान दशा में कहा जाता है कि "यहाँ घडा उत्पन्न होगा" यहाँ मृत्तिका में उत्पत्ति के पूर्व में घट का प्रागभाव रहता है तदनन्तर मृत्तिका में घटादिक कार्य उत्पन्न होता है और वह घट उत्पन्न होकर के स्वजनक प्रागभाव को नष्ट कर देता है क्योंकि घट के उत्पन्न होने के बाद प्रागभाव नहीं देखने में आता है । प्रागभाव अनादि तथा शांत माना जाता है । अर्थात प्रागभाव अनादि अनुत्पन्न है तथा विनष्ट होता है कोई कोई तो प्रागभाव की निवृत्ति स्वरूप घट को मानते है और कोई कहते हैं कि घट प्रागभाव का निवर्तक

श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलभुक् तत्सहायोऽभिमानी

है जन्य पदार्थ का प्रागभाव होता . तथा जिस तरह घटादि कार्यका कारण मृदादिक है उसी तरह प्रागभाव भी कार्य का जनक होता है तथा कार्य के द्वारा ही विनष्ट होता है। जीव एतादृश प्रागभाव का प्रतियोगी नहीं होता है। अर्थात उत्पन्न नहीं होता है। अनादि है। तथा जिस तरह घटादिक कार्यदण्ड प्रहारादि के द्वारा विनष्ट होने से ध्वंस प्रतियोगी कहलाता है उस प्रकार जीव का विनाश नहीं होने से जीव ध्वंस का प्रतियोगी भी नहीं होता है इसलिये जीव सनातन अर्थात् सर्वदा एक रूप से रहने के कारण सर्वदा एक रूप सर्वदा अवस्थायी आदि मध्यनिधन हीन है।

उपर्युक्त प्रकार से तर्क तथा युक्ति द्वारा चिद्द्रव्य जीव में सर्वदा एकरूप नित्यत्व सनातनत्व अर्थात् आदिमध्य अन्त राहित्यत्व की सिद्धि होती है ऐसा बतलाया गया। उपर्युक्त यह विषय श्रुति स्मृति द्वारा भी समर्थित होता है अर्थात् जीवरूप चित् द्रव्य में नित्यता की सिद्धि श्रुति स्मृति द्वारा भी सिद्ध होता है—तथाहि

"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान्॥
कार्य कारण कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुख दुःखानो भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥

जीवः सम्प्रोच्यते श्रीहरिपदसुमते ! तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः ॥"

इति ॥५७॥

इत्यनुभवानन्दद्वारपीठनामकश्रीरामानन्दाचार्यपीठसंस्थापकैर्जगद्गुरु

श्रीमदनुभवानन्दाचार्यैं विरचिते श्रौतार्थसङ्ग्रहे

जीवनिरूपणात्मकः प्रथमः परिच्छेदः

॥ १ ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुण संगोऽस्य सदसद्योनि जन्मसु ॥

अयमर्थः—हे अर्जुन ! प्रकृति अर्थात् सर्व कार्य का उपादान कारण अचित् मूल प्रकृति तथा पुरुष चित् द्रव्य जीव ये दोनों अनादि हैं नित्य हैं आदिनिधन हैं ऐसा समझो अर्थात् इन दोनों पदार्थों का न कभी जन्म होता है न वा इन दोनों का कभी विनाश होता है ये दोनों सर्वदा एकरूप हैं । और विकारादी जो सत्वादिक सुखादिक हैं ये सब प्रकृति जन्य होने से आविर्भाव शील हैं । सुखादिक में जो कार्यत्व है प्रकृति में जो सर्वोपादानत्व रूपकारणत्व है तथा पुरुष में जो कर्तृत्व का प्रतिभास होता है इन सब में कारण प्रकृति है, अर्थात् कार्यत्व कारणत्व और कर्तृत्व के विपरिणामी के हेतु प्रकृति है प्रकृति के द्वारा ही कार्य कारणादिभाव की व्यवस्था होने से प्रकृति ही सब का नियामक है । प्रश्नः—जब सब कार्य कारणादि की व्यवस्था प्रकृत्यधीन है तब पुरुष को मानने की क्या आवश्यकता

है ? इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं–"पुरुष सुखदु:खाना मित्यादि,, सुख दु:खों का जो भोक्तृत्व है उसका कारण पुरुष है अर्थात प्रकृति जड पदार्थ है तो जड में भोक्तृत्व का बाध होने से चेतन पुरुष की स्थिति मानी जाता है अर्थात् पुरुष भोक्ता होता है इसलिये प्रकृत्यतिरिक्त पुरुष का स्वीकार किया जाता है ।

प्रश्न "ज्ञानानन्दमयोऽमल:" इस वचन से सिद्ध होता है कि जीव ज्ञान आनन्दमय तथा सब प्रकार के मल से रहित है अर्थात् सब प्रकार के विकारादि दोष से विवर्जित है तव जीव में भोक्तृत्व रूप विकार का प्रवेश किस तरह हुआ जिससे कि जीव का भोक्ता माना जाता है ? इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर देते हुए भगवान् कहते हैं–"पुरुष: प्रकृतिस्थो ही,, त्यादि । यद्यपि स्वभावत: जीव ज्ञानानन्दादि स्वरूप होने से भोक्तृत्वादि विकार का आश्रय नहीं है किन्तु प्रकृति कार्य मनुष्य देवादिकों में प्रकृति संबन्ध के बल से अनुप्रविष्ट होने से प्रकृति जनित सुख दुखादिक विकारों का उपभोग करते हैं तथा सत असत योनियों में जो इन (जीवों) का जन्म होता हैं उन सब का कारण प्रकृति तथा प्राकृतिक कर्म का संबंध है । अर्थात् अविद्या तथा कर्मादिको के संबन्ध से ये सब होते हैं । अर्थात् जीव स्वरूपत: निर्मल तथापि अनादिकालिक भव परंपरा से उपार्जित कर्म के बल से देव मनुष्यतिर्यगादि शरीरों में जन्म लेकर कर्मानुरूप तथा शरीरोचित सुखदु:ख का अनुभव कहते है यह

उदाहृत स्मृति वचनों का सारार्थ होता है विस्तार विवेचन प्रकृतश्लोकों के आचार्य कृत आनन्दभाष्य विवरण में देखें। इससे यह सिद्ध होता है कि जीव स्वरूप से नित्य हैं सनातन अनादि मध्यनिधन हैं। एवं स्मृत्यन्तर में भी कहा है—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः,
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः (२।२३)
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥" (२।२४)

मनुष्यादिक शरीरों में शरीरी रूप से विद्यामान इन जीवात्माओं का तलवार आदि शस्त्र समुदाय छेदन नहीं कर सकता है अर्थात् काट नहीं सकता है क्योंकि जीवात्मा निरवयव है और ज्ञानगुण के द्वारा व्यापक है जिस तरह आकाश व्यापक तथा निरवयव होने से आकाश में तलवार आदि शस्त्रों से छेदनादिक नहीं होता है उसी तरह जीव को निरवयव तथा ज्ञान गुण द्वारा व्यापक होने से शस्त्रादि द्वारा विनाश नहीं किया जा सकता है। एवं इस जीवात्मा को जल क्लेदित नहीं कर सकता है क्योकि जीव निरवयव है सावयव पदार्थ के अवयवों का विश्लेषण द्वारा क्लेदन होता है, एवं इस जीव को अग्नि जला नहीं सकती है क्योकि सावयव पदार्थ का ही दहन होता है जीव तो निरवयव है। एवं वायु भी जीव को सुखा नहीं सकता है निरवयव होने से किन्तु यह जीव अच्छेद्य अदाह्य है अक्लेद्य और अशोष्य है

इसलिये यह जीव नित्य है उत्पाद विनाश रहित है। सर्वगत अर्थात् ज्ञान गुण के द्वारा व्यापक है, जिस तरह सूर्य एक जगह में अवस्थित होने पर भी सर्वगत स्वप्रभा द्वारा अखिल ब्रह्माण्डोदर को भासित कराता है उसी तरह यह जीव ज्ञान गुण द्वारा सर्व पदार्थ का भासक होने से सर्वगत तोता है अत एव निदाघ समय में जाह्नवी जल निमग्नपुरुष को संपूर्ण शरीर में शैत्य का अनुभव होता है। यद्यपि जीव स्वरूप से अणु परिमाणक है तथापि ज्ञानगुण से सब को व्याप्त करके प्रकाशित करता है इसलिये जीव में व्यापकत्व का उपचार होता हैं एवं स्थाणु स्थिर हैं चलनादि क्रिया से वर्जित है तथा सनातन आदिमध्यान्त रहित है। इससे जीव में नित्यत्व सिद्ध होता है। एवं श्रुतिवचनों से भी सिद्ध होता हैं कि जीवात्मा नित्य है अर्थात् अनादिमध्य निधन सनातन है तथाहि

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं प्राणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥"

यह ज्ञान का अधिकरण ज्ञान स्वरूप स्वभावतः अविद्या मलरहित जीवात्मा कभी भी न जायते" जनि क्रिया का विषय नही होते हैं अर्थात् जीव कभी उत्पन्न नहीं होते हैं। इससे उत्पत्त्यादिक जो भावविकार हैं उनमें से प्रथम भाव विकार जन्म का निराकरण श्रुति करती हैं तथा यह जीव आत्मा कभी भी मरती नहीं है इससे छ भाव विकार का अन्तिम जो मरणरूप

विकार है तादृश मरणात्मक भाव विकार का श्रुति से निराकरण किया जाता है–इस बात को यह काठक श्रुति कहती है। तथा यह जीव होकर के पुनः होने वाला नहीं है ऐसा नहीं किन्तु होने वाला ही है जो हो करके पुनः होने वाला नहीं होता है वह उत्पाद विनाशशाली होता हैं जैसे पटादिक पदार्थ एक बार अस्ति किया का विषय होकर के पुनः होने वाला नहीं होता है अतः घटादिक उत्पाद विनाश शील होता है ऐसा देखने में आता है परन्तु यह आत्मा होकर के पुनः होने वाली है। यहाँ "नायं भूत्वा भूयो न भविता" इस जगह दो नकार पढा गया है और दो नकार प्रकृतार्थ का गमक होता है। नैयायिक लोग अभावा भाव को प्रतियोगी का ही स्वरूप मानते हैं घटाभावाभाववद् भूतलम्" यह कहने से "घटवद भूतलम्' ऐसा ही जाना जाता है तथा "दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः" इस भारवी के श्लोक में "दुनोत्येव" ऐसा अर्थ किया गया है। तदनुसारः–उसी तरह प्रकृत में "यह आत्मा होकर के पुनः होने वाला नहीं है "ऐसा नहीं किन्तु होने वाली है ऐसा अर्थ होता है। इसलिये एतादृश स्वभावक आत्मा है, इसलिये इस देव मनुष्यादिक शरीर में कर्मवल से अवस्थित आत्मा शरीर का हनन होने पर भी हनन क्रिया का कर्म तथा कर्ता नहीं बनती है। इस कारण से यह आत्मा अज है अर्थात् उत्पन्न नहीं होती है। नित्य है उत्पाद विनाश रहित है। तथा शाश्वत है सर्वदा अवस्थायी एक वार जो हो उसको

शाश्वत कहते हैं तथा यह आत्मा पुराण है पहले भी नवीन थी वर्तमान में भी नव है।

इन सब विशेषणों से छवों भाव विकार का निराकरण कर के श्रुति जीव को नित्य बतलाती है इन सब प्रमाणों के द्वारा आत्मा में नित्यत्व को स्थिर कर के जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य जी ने कहा हैं "नित्य अर्थात् निरुप्यमाण जो चित् पदार्थ है जो कि इह लोक परलोक यात्रा तथा मोक्षाधिकारी है वह नित्य है। इसको कदाचित् अनित्य मान लिया जाय तब स्वर्गादि की व्यवस्था तथा बन्ध मोक्ष की व्यवस्था का उत्पादन अशक्य हो जायगा तथा चार्वाक मत में अनुप्रविष्ट होना पड़ेगा। इसलिये आचार्यजी ने जीव को सर्व प्रथम नित्य कह कर के शरीरादि से विलक्षणरूप में नित्यत्व का कथन किया है।

इस तरह जीव में नित्यत्व विशेषण को बतलाकर के द्वितीय विशेषण को बतलाते हैं "ज्ञः" इति। यह निरूप्यमाण चित्पदाथ ज्ञ स्वरूप है अर्थात् जीव ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञाता ज्ञानाधिकरण है अर्थात् ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो स्वरूप ज्ञान तथा दूसरा धर्मभूत ज्ञान धर्मिज्ञान तथा धर्मज्ञान धार्मिज्ञानरूप जीव हैं और घटपटादि विषयक ज्ञान है। इसी को केवलाद्वैती स्वरूप ज्ञान तथा वृत्तिज्ञान कहते है अर्थात् "ज्ञानघनः" इत्यादि श्रुतिसिद्ध ज्ञान रूप जीव स्वरूप ज्ञान कहलाता है। तथा चक्षुरादिकरण द्वारा जायमान अन्त करण का परिणाम रूपज्ञान

वृत्तिज्ञान कहलाता है, यह ज्ञान यद्यपि अन्तः करण का कार्य होने से जड है तथापि वृत्ति में ज्ञानत्व का उपचार कर के इसको भी ज्ञान कहते हैं यह है वृत्तिज्ञान घटादि विषयक। इसी प्रकार बौद्ध के मत में भी ज्ञान दो प्रकार का है— आलयविज्ञान तथा प्रवृत्त विज्ञान इसमें आलयविज्ञान को आत्मा कहते हैं तथा घटादि विषयक ज्ञान को प्रवृत्त ज्ञान कहते हैं तदुक्तम् 'तत्स्या दालय विज्ञानं यद्भवेदह मास्पदम् । तत्स्यात्प्रवृत्ति विज्ञानं यन्नी लादिकमुल्लिखेत् इति । और स्वकीय विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में इसी को धर्मि तथा धर्मज्ञान कहते हैं तो जीव स्वयं धर्मिज्ञान रूप है तथा धर्मज्ञान का अधिकरण होने से ज्ञाता कहलाता है। इसका विशेषविवेचन 'ज्ञोऽतएव' इस सूत्र के आनन्द भाष्य विवेचन में देखिये ।

अथवा "नित्योऽज्ञः" यहां नञ् का छेद है और नञर्थ है अल्पत्व तब सर्वज्ञ परमेश्वर की अपेक्षा से जीव अल्पज्ञ है ऐसा अर्थ होता है। यद्यपि नञ् का अर्थ अन्यत्र निषेधरूप होता है तब अज्ञ शब्द का अर्थ होगा ज्ञानरहित तो सिद्धान्त विरोध होगा ? तथापि जिस तरह नञ का अर्थ निषेध आदि होता है। उसी तरह अल्पज्ञत्वादिक भी होता है— तदुक्तम् "तत्सादृश्य मभावत्वं तदल्पत्वं तदन्यता । अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥ सादृश्य, अभाव अल्पता, अन्यत्व अप्राशस्त्य और विरोध छ अर्थ समासान्तर्गत नञ का होता है—यथा "न इक्षुर निक्षुः सरः' इक्षु सदृशः अर्थात जिस सरोवर का जल अतिमिष्ट

है तथा जो सरोवर इक्षु की तरह लंबायमान है तादृश स्थल में "अनिक्षुः सरः ऐसा प्रयोग होता हैं उस स्थल में न इक्षुरनिक्षु ऐसा समास करने पर तथा नुडागम होने पर नञ् जो समासोत्तर नुट् के पूर्व में विद्यमान है वह योग्यता के बल से सादृश्य अर्थ को बतलाता है न तु अभाव प्रभृति अर्थ को बतलाता है। एवम् "अघटं भूतलम्" इस स्थल में नञ अभावरूप अर्थ को बतलाता है अर्थात् भूतल घटाभाव वाला है। एवं "अघटः पटः" यहां घटभिन्नः पटः यह अर्थ होता है इसलिये नञ भेदरूप अर्थ का प्रतिपादक होता है न तु अभावादिक अर्थ का प्रतिपादन करता है। एवं "अलवणकं शाकम्" जहां साग के अन्दर थोडा रामरस (नमक) डाला गया हो उस जगह में भोजन करने वाले करते हैं कि साग में नमक नहीं है अर्थात् साग में जितने प्रमाण में रामरस छोड़ना चाहिये उतना नहीं छोडा गया है किन्तु प्रमाण से अल्प नमक छोडा गया है तो इस स्थल में नञ् का अर्थ अत्यंताभाव नहीं है किन्तु अल्पता ही अर्थ है—यथा वा "अनुदरा कन्या" नास्ति उदरं यस्याः सा अनुदरा यहाँ नञ् का अर्थ अभाव नहीं है क्योंकि उदरात्यंता भाव प्रत्यक्षबाधित हैं अतः अल्पत्व अर्थ प्रत्यक्ष सिद्ध है छोटा पेट होने से। एवं "अब्राह्मणो वार्धुषिकः" यह वार्धुषिक नामक व्यक्ति अब्राह्मण है अर्थात् अप्रशस्त ब्राह्मण हैं यह अर्थ होता है न तु ब्राह्मणत्वरहित है अथवा ब्राह्मणरहित है ऐसा अर्थ नहीं होता है। इसलिये अप्राशस्त्य भी नञर्थ होता है। एवं न सुरोऽसुरः सुर विरोधी यहां सुरभिन्न यह अर्थ यदि

किया जाय तब तो देवभिन्न मनुष्यादिक में भी असुरत्व हो जायगा, अतः प्रकृत नञर्थ विरोधरूप ही है। इसप्रकार से समासान्तर्गत नञ का अर्थ होता है। प्रकृत "अज्ञ" इस स्थल में सर्वज्ञ परमेश्वरापेक्षया जीव में अल्पज्ञान है ऐसा अर्थ अज्ञ का है न तु ज्ञानसामान्याभववान् अर्थ है क्योंकि वनस्पति से लेकर ब्रह्मान्त जीवों में ज्ञान के तारतम्य पूर्वक ज्ञानमात्रा सर्वत्र उपलब्ध है। श्रुति भी कहती है "ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशौ" ज्ञः अज्ञः ये दोनों अज अजन्मा हैं तथा इनमें से एक ईश परमेश्वर हैं और दूसरा अनीश जीव है। इसमें "ज्ञः" ऐसा पाठ हो तब तो जानने वाले को ज्ञ कहते है अर्थात् जड भिन्न न तु प्रकृति की तरह जड है एवं यह जीव चित्पदार्थ चेतन है ज्ञानवान है। एवं यह चित् पदार्थ अज है उत्पन्न होने वाला नहीं है अर्थात् जन्म मरणादि भाव विकार से रहित है। एवं यह जीव चित्पदार्थ सतत सर्वदा सर्व काल में जीव भिन्न परमात्मा के वश अधीन होकर के रहने वाला है अर्थात् सर्वत्र सर्वदा प्रधान पराधीन है ईश्वर के अधीन होकर के ही रहता है स्वतंत्र कभी भी नहीं है।

पुनः यह जीव कैसा है ? तो कहते हैं—"सूक्ष्मतोऽत्यन्त सूक्ष्मः" सूक्ष्म रूप में प्रसिद्ध जो अणु परमाणु उन परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है। सिद्धान्त में जीव को मध्यम देह परिमाणक तथा व्यापक नहीं माना गया है किन्तु अणु परिमाणक माना गया हैं। क्योंकि मध्यम परिमाणवान् मानेंगे तब शरीर से

उत्क्रमण तथा गमनागमन नहीं होगा, इसलिये जीव सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म है। यद्यपि अणु परिमाण पक्ष में सकल शरीर गत जो शैत्यादिक का उपलंभ होता है वह नहीं होगा क्योंकि जीव तो सर्वावयवावच्छेदेन शरीर के एक देश में रहता है। तथापि सूर्य प्रभा की तरह जीवगुणज्ञान सर्वत्र रहता है। इस लिये संपूर्ण शरीर में एक ही समय में सुखदु:खादिकों का उप-लंभ होता है अत: जीव को अणु मानने में कोई आपत्ति नहीं होती है, प्रत्युत श्रुति भी जीवाणुवाद का ही समर्थन करती है। तथापि–

"बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीव: स विज्ञेय: स चानन्ताय कल्प्यते ।।" इति।

अर्थात् एक बालरोम का जो अग्रभाग है उस केश के अग्रभाग को सौ भाग किया जाय और उसमें से एक भाग को पुन: सौ भाग करने पर जो सौवां भाग है उसके बराबर जीव को समझना चाहिये। अर्थात् शरीरस्थित सूक्ष्म एक रोम का जो सहस्रांश भाग है उसके बराबर का जीव परिभासित होने से जीव अति सूक्ष्म है। ऐसा कहा भी है "रोम्ण: सहस्त्रभागेन सूक्ष्मासु विचरत्ययम्' एक रोम का जो सहस्रभाग है उसके तुल्य सूक्ष्म जो सूक्ष्म नाडी है उन नाडियों में चलने वाले जीव हैं इसलिये अतिसूक्ष्म तथा अनन्त है। एतादश अणुपरिमाणक जीव भक्त्यादि द्वारा प्रसादित श्रीसीतानाथ की कृपा से आनन्त्य

मोक्ष को प्राप्त करने के अधिकारी होते है । श्रुत्यन्तर से भी जीवाणुत्व सिद्ध होता है– "एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः" यह जीवात्मा अणु है जिस तरह परमाणु प्रत्यक्ष नहीं होता हैं । उसी तरह जीव भी प्रत्यक्ष नहीं तोगा ? तब "अहं सुखी" इत्यादि प्रत्यक्ष का बाघ होगा इस शंका का निकाकरण श्रुति करती है चेतसा वेदितव्यः' इस वाक्य से उस जीव को जो अति सूक्ष्म है उसको निर्मलान्तः करण से जानो । इस प्रकार से सिद्ध होता है कि जीव सूक्ष्म रूप से प्रसिद्ध परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है । तथा पुनः कैसे जीव है ? इसके उत्तर में कहते हैं "प्रतिकुणपम" इत्यादि कुणप शब्द का अर्थ होता है शरीर शरीर के संबंध से बद्ध जीव मुक्त जीब इत्यादि भेद से अनेक प्रकारक अर्थात् बद्ध जीव भी असंख्येय हैं तथा मुक्त जीव भी असंख्येय होनेसे अनेक-प्रकार का होता हुआ अपरिमित हैं । पुनः जीव श्रीशाक्रान्तालयस्थः श्रीश कहते हैं श्रीसीता नाथ को श्रीलक्ष्मी रूप श्रीसीताजी का ईश भगवान् श्रीरामजी से अन्तर्यामी रूप से आक्रान्त, अधिष्ठित जो आलय पाप पुण्य का आलय शरीर तादृश भगवदधिष्ठित षाट्कौशिक शरीर में जीव निवाश करता हुआ । आचार्यजी शरीर भेद से जीव को अनेक अपरिसंख्येय मानते हैं अन्यथा बन्ध मोक्ष व्यवस्था सुखित्व दुःखित्व व्यवस्था नहीं बन सकेगी । एगादृश यह जीव शरीर भेद से नाना होता हुआ अन्तर्यामी परमात्मा से अधिष्ठत इस शरीर में निवास करता हुआ "निजकृत फलभुक् स्व से संपादित सुकृत दुश्कृत कर्म का जो फल है सुखादिक

उसका भोक्ता हैं। यद्यपि इस शरीर में जीव परमात्मा येदोनों रहते हैं तथापि शरीर द्वारा संपादित कर्मफल का उपभोग जीव को ही होता है परमेश्वर को फलभोग नहीं होता है। क्योंकि फलभोग का निमित्त कारण जो पुण्य पाप है वह ईश्वर में नहीं होता है "क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः" ऐसा श्रीपतंजलि ने कहा है। कर्मफल का भोक्ता जीव है परमेश्वर नहीं इसबात का प्रतिपादन श्रुति करती है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥

अर्थात् शरीररूप एक वृक्ष के ऊपर रहने वाले परस्पर समान तथा अतिपरिचित होने से मित्र भाव को प्राप्त किये हुए दो शोभन पक्ष वाले पक्षी जीव तथा परमेश्वर निवास करते है अर्थात् इस शरीर रूप वृक्ष पर जीव तथा परमेश्वर रहते है इन दोनों चेतन के बीच में एक पक्षी अर्थात् जीवात्मा स्वकृत कर्मफल का भोक्ता है और द्वितीय पक्षी परमात्मा कर्मफल का उपभोग न करते हुए प्रकाशित होते है, जिस भगवान् के प्रकाशित हो कर के सूर्यादिक प्रकाशित होते है ऐसा स्वप्रकाश रूप भगवान् स्वयं प्रकाशित है। तथा यह यह जीव "तत्सहायः" है अर्थात् परमात्मा है सहायक जिसका एतादृश यह जीव है तथा "अभिमानी" है अर्थात् मैं भोक्ता हूं कर्म का कर्ता हूं इत्यादि अभिमानवान् है। तथा यह जीव "तत्त्वजिज्ञासुओं

से वेद्य जानते के योग्य है अर्थात् जो व्यक्ति तत्व को जानने की ईच्छा रखते हैं उनके द्वारा तत्वरूप से जिज्ञास्य है ऐसा विद्वानों ने जीव रूप को बतलाया है। ऐसा होने से अणुत्व पारतंत्र्य विशिष्ट नित्य अनेक प्रकारक स्वकृत कर्मफल का भोक्ता जीव है ऐसा पूर्वाचार्यों का कथन है। यह जीव–चित् पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं बद्ध जो संसार में रह कर के ऐहिक तथा पारलौकिक विहित प्रतिषिद्ध कर्म का अनुष्टान करके तादृश कर्म का भोगने के लिए तत्तत्कर्म अनुकूलफल को भोगते हुए घटी यंत्रवत् एक योनि से द्वितीयादि योनि में सर्वदा भ्रमण करते हैं ऐसे बद्ध कहलाते है और द्वितीय जीव हैं मुक्त जो कि भक्ति ज्ञान द्वारा भगवान् की शरणागति को स्वीकार कर के स्वकर्म भोगान्त में जाकर के भगवान् श्रीसीतानाथ का कैंकर्य करते हुए भगवान् के साथ रह करके ईश्वरीय लीला का रस का अनुभव करते हैं। तृतीय जीव हैं नित्यसूरि जो कि कभी संसार में नहीं आये न वा आने वाले हैं श्रीहनुमान् प्रभृतिक, ये लोग भगवान् के साथ रह कर के कैंकर्य करते हुए लीला विभूति तथा नित्य विभूति का अनुभव करते रहते हैं। ये तीन विभागों में विभक्त जो जीव समुदाय हैं ये प्रत्येक वर्ग में विद्यमान जीवराशि प्रत्येक अनन्त है इनकी संख्या नियत नहीं होने से असंख्येय है। यहाँ कोई कोई वादी कहते हैं कि आत्मा एक ही है अनेक नहीं। ऐसा कौन है! ऐसा पूछे तो जीव के

अद्वैत प्रतिपादकशास्त्र में कुछ कुदृष्टिलोग है ब्रह्माद्वैत प्रतिपादक शास्त्र में ज्ञायमान जो अद्वैत है वह दो प्रकार का है ब्रह्माद्वैत तथा जीवाद्वैत इसमें प्रकारी के अद्वैत को ब्रह्माद्वैत कहते हैं और जीवाद्वैत को प्रकाराद्वैत कहते हैं इसका क्या नियामक है ! ऐसा पूछे तो ब्रह्म प्रकरण में तत्तत्स्थलों में "सर्वं खल्विदं ब्रह्म ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् "पुरुष एवेदं सर्वम्" इत्यादि स्थल में सामानाधिकरण्य से ब्रह्माद्वैत का प्रतिपादन होता है क्योंकि सामानाधिकरण्य जो है वह प्रकार भेद विशिष्ट प्रकारी के एकत्व परक होता है "एकः सन् बहुधा विचचार" इत्यादि स्थल में प्रकार का बहुत्व प्रतिपादित हुआ है। "नेह नानास्ति किंचन" इत्यादि वाक्य है वह प्रकारी बहुत्व का निषेध परक है इसे प्रकारी ब्रह्माद्वैत करते हैं। प्रकार रूप जो जीव है उसका बहुत्व तो श्रुति सिद्ध है अन्यथा बद्ध मुक्त की व्यवस्था नहीं होगी गुरु शिष्य व्यवस्था अनुपपन्न हो जायगी तथा सुखित्व दुःखित्व व्यवस्था नहीं पटेगी इसलिये जीवैक्य नहीं है किन्तु तीनों वर्गों में रहने वाले जीव प्रत्येक असंख्येय ही हैं एक नहीं हैं। यदि आत्मा में भेद न माना जाय किन्तु अभेद मानें तब तो एक को सुखानुभव काल में अन्य व्यक्ति को दुःखानुभव नहीं होना चाहिये परन्तु ऐसा तो नहीं होता है एवं कोई संसार में आता है कोई मुक्त होता है यह भी एकात्मवाद में नहीं होगा तथा कोई गुरु उपदेशक है कोई शिष्य होता है एतादृश गुरु शिष्य भाव व्यवस्था भी नहीं होगी तथा विषम सर्ग

भी अनुपपन्न होगा एकात्मवाद पक्ष में तथा एकात्मवाद पक्ष में आत्मभेद प्रतिपादक 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया इत्यादि श्रुति के साथ विरोध भी होता हैं इसलिये एकात्मवाद पक्ष ठीक नहीं हैं। नहीं कहें कि—आत्मभेद प्रतिपादक श्रुति औपाधिक भेद का प्रतिपादन करते हैं जिस तरह आकाश स्वभाव से एक ही है तथापि घटादि उपाधि के भेदों से घटाकाश मठाकाश ऐसा भेद व्यवहार होता है उसी तरह प्रकृत मैं आत्मा स्वभाव से तो एक ही है तथापि देव मनुष्यादि भेद से भिन्न रूपेण व्यवहृत होता है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि मोक्ष दशा में भी आत्मा में परस्पर स्वरूप भेद तो रहता ही है। यद्यपि मोक्ष काल में देव मनुष्यादि भेदों को निवृत्त हो जाने पर आत्मा स्वरूप की अत्यन्त समान हो जाने से किसी भी प्रकार से अर्थात् वैधर्म्यादिक भेदक कारण के नहीं रहने पर किसी भी प्रकार से भेद कथन संभवित नहीं है तथापि परिमाण गुरुत्वादि आकारों के अत्यंत समान होने पर भी जिस तरह कपोत रजत घट व्रीहि प्रभृति पदार्थों में स्वरूप भेद सिद्ध होता है। उसी तरह आत्माओं में भी स्वरूप भेद सिद्ध है इसलिये आत्मभेदवाद ही मान्य होता है। न तु जीवाभेद का स्वीकार करना युक्ति सिद्ध है न वा श्रुति सिद्ध है।

तीन विभागों में विभक्त इन तीनों का अनुगत लक्षण यह है कि "शेषत्वे सति ज्ञातृ त्वम्" अर्थात् परमेश्वर का शेष होकर

के जो ज्ञाता है उसको जीव कहते हैं। जो असाधारण धर्म जिसका होता है वह उसका लक्षण कहलाता है यथा— गन्धवत्त्वं' पृथिवी का असाधारण धर्म है तो गन्धवत्व पृथिवी का लक्षण होता है। यद्यपि उत्पत्ति कालावच्छेदेन घटादिक पृथिवी में गन्ध नहीं रहता है। तथापि गन्ध समानाधिकरण द्रव्यत्व व्याप्यजातिमत्व रूप ही पृथिवी का लक्षण कहलाता है। इसी तरह प्रकृत में भी जीवों का लक्षण होता है 'शेषत्वे सति ज्ञातृत्व' अर्थात् सर्वशेषी सर्वेश्वर श्रीराम का शेष होकर के जो ज्ञाता ज्ञान क्रिया का कर्ता हो यह लक्षण जीवों का होता है। इसमें शेषत्व लक्षण विशेषण का ग्रहण यदि न किया जाय तब तो ज्ञानाधिकरण रूप ज्ञातृत्व तो परमेश्वर में भी होने से परमेश्वर में जीव लक्षण की अति व्याप्ति होगी तो केवल ज्ञातृत्व जीव का असाधारण धर्म नहीं होगा, इसलिये शेषत्वे सति यह विशेषण दिया गया एतादृश विशेषण देने से अतिव्याप्ति नहीं होती है क्योंकि ईश्वर में शेषत्व नहीं है यतः ईश्वर सब के शेषी ही होते हैं किन्तु किसी के शेष नहीं होते हैं जगद्गुरु श्रीसदानन्दाचार्यजी देशिकसम्राट् ने श्रीबोधायन पञ्चक में कहा है—

"रामोब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निश्रेयसम् ,
शेषा येन च शेषिणो रघुपते जीवा इति स्वीकृतम् ।

इत्यादि। जो अधिकरण के अतिशयाधानेच्छया उपादेय स्वरूपक हो वह शेष कहलाता है ईश्वर ऐसे नहीं हैं इसलिये किसी के शेष नही हैं किन्तु सब के शेषी ही हैं। एवं यदि शेषत्व

मात्र जीव का लक्षण कहें ज्ञातृत्व रूप विशेष्य का उपादान न करें तब परमेश्वर का शेषरूप पृथिव्यादिक जड पदार्थों में भी लक्षण समन्वय होने से अति व्याप्ति होगी पृथिव्यादिक सकल पदार्थ ईश्वर के शेष हैं इसलिये ज्ञातृत्वरूप विशेष्य का ग्रहण किया जाता है यथोक्त विशेष्य का उपादान करने से पृथिव्यादि जड पदार्थों में उक्त जीव लक्षण की अतिव्याक्ति नहीं होती है। इस तरह लक्षण का जो अतिव्याप्ती अव्याती तथा असंभवरूप दोषत्रय रहित होने से यह शेषत्वे सति ज्ञातृत्व असाधारण धर्म है तथा असाधारण धर्म होने से त्रिविध जीवों का शेषत्वे सति ज्ञातृत्व अनुगत लक्षण होता है। यदि लक्षण में अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असंभव दोष रहे तो क्या आपत्ति होगी ? तो भागासिद्धि व्यभिचार तथा स्वरूपासिद्धिरूप दोषात्मक हेत्वाभास इतर भेदानुमान में हो जायगा, यही आपत्ति होगी इन सब बातो को अन्यत्र देखिये ग्रन्थ बिस्तारभय से उन सब दोषों को नही बतलाकर के संक्षेपरूप से कथन किया गया है। और बद्ध मुक्त नित्य मुक्त ये तीनों प्रकार के जीव वर्ग हैं इन सब का विषय प्रकाशक जो धर्मरूप ज्ञान है वह "सत्यं ज्ञानमानन्दम् प्रज्ञान घनः' इत्यादि श्रुति सिद्ध धर्मीभूत स्वरूप ज्ञान की तरह नित्य द्रव्य अजड और आनन्दरूप है। अर्थात् जिस तरह ज्ञानात्मक जीव नित्य है द्रव्य है अजड तथा आनन्द रूप है उसी तरह इन तीनों जीव का जो विषय प्रकाशक धर्म ज्ञान के आश्रय बनने से ये तीनों प्रकार के जीव ज्ञाता कह-

लाते हैं वह धर्मभूत ज्ञानभी नित्य है द्रव्य रूप है अजड है और आनन्दरूप है। अर्थात् जैवीय स्वरूप ज्ञान में जिस तरह नित्यत्त्व द्रव्यत्व अजडत्व तथा आनन्दरूपत्व है उसी तरह जीव का जो विषय प्रकाशक धर्म भूत विज्ञान है उसमें भी नित्यत्व द्रव्यत्व अजडत्व तथा अनन्दरूपत्व है।

प्रश्नः – जब जीव तथा धर्मभूत ज्ञान में सर्वांश में समता है तब तो धर्मभूत ज्ञान तथा धर्मीभूत ज्ञानात्मक जीव में परस्पर में विलक्षणत्व किस तरह होगा अर्थात् जब दोनों समान हैं तब यह ज्ञान है तथा यह जीव है इत्याकारक विभाग कैसे—होगा ?

उत्तर –जीव का जो स्वरूप ज्ञान है वह धर्मी है संकोच विकाशरूप क्रिया का आश्रय नहीं बनता हैं अर्थात् स्वरूप ज्ञान का संकोच विकाश नहीं होता है सर्वदा एक रूप में रहता हैं तथा आत्म व्यतिरिक्त का प्रकाशक नहीं होता हैं तथा स्व के लिए स्वयं प्रकाशक होता है। और अणु परिमाणक हैं यह तो जीव के स्वरूप ज्ञान का स्वरूप हैं। और विषय प्रकाशक जो ज्ञान हैं वह धर्म हैं अर्थात् धर्मी जीव का धर्म हैं जीवाश्रित है तथा संकोच विकाशशील है अर्थात् धर्म ज्ञान का संकोच विकाश होता है तथा स्वभिन्न घट पटादि ब्रह्म तथा आन्तर वस्तु का प्रकाशक है तथा स्व के लिये स्वयं प्रकाश नहीं है

तथा आत्मा के लिये प्रकाशक है और व्यापक है यह धर्मज्ञान का स्वरूप है अर्थात् धर्मीत्व संकोच विकाशायोग्यत्व स्वभिन्न विषयाप्रकाशत्व स्वयं प्रकाशत्व और अणुत्व ये सब वैलक्षण्य स्वरूप ज्ञान का है, तथा धर्मत्व संकोच विकाश योग्यत्व स्वभिन्न विषय प्रकाशत्व स्व के लिये स्वयं प्रकाशराहित्य स्वाश्रय के लिये स्वयं प्रकाशत्व और व्यापकत्व ये सब वैलक्षण्य ज्ञान का हैं जिसको धर्म ज्ञान कहते हैं उसका है। पंडितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी ने श्रौतप्रमेय चन्द्रिका के प्रभा नामक स्वव्याख्यान में लिखा है कि — "यह ध्यान में रखना चाहिए कि जीव प्रत्यक् अजड (स्वयं प्रकाश) द्रव्य हैं अर्थात् स्वार्थ स्वयं प्रकाश द्रव्य है और धर्मभूत ज्ञान पराक् अजड द्रव्य हैं अर्थात् परार्थ स्वयं प्रकाश द्रव्य हैं इसलिये जीव और धर्मभूत ज्ञान दोनों भिन्न भिन्न द्रव्य हैं एक नहीं"।

प्रश्न :— आपने कहा कि जीव का जो धर्मज्ञान वह विभु= व्यापक है अणु नहीं तब तो प्रत्येक जीव का ज्ञान व्यापक रूप तो उपलब्ध नहीं होता है किन्तु व्याप्य रूप से ही उपलंभ होता है ?

उत्तर—ये जितने जीव हैं उन में से किसी का ज्ञान तो सर्वदा व्यापक ही रहता है यथा नित्य मुक्त का, तथा संसारी जो बद्ध जीव हैं उनका ज्ञान सर्वदा अविभु ही होता है और मुक्त जो पुरुष हैं उनका ज्ञान पूर्वावस्था में अविभु होता है

तथा उत्तरावस्था में विभु रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि ज्ञान में संकोच विकाश मूलक विभुत्व अविभुत्व का व्यवहार होता है तथाहि—"अज्ञान शून्या अमरा" इस वचन के अनुसार परमेश्वर के ज्ञान में कभी भी संकोच नहीं होने के कारण परमेश्वर के स्वरूप गुण तथा उनकी विभूतियों का सदा अनुभव करने वाले जो नित्यसूरि हैं तादृश नित्यसूरि का जो ज्ञान है वह व्यापक है अर्थात् नित्य सूरियों का ज्ञान कभी भी संकुचित नहीं होता है क्योंकि संकोच का कारण अविद्या तथा कर्म है वह तो नित्य सूरि को नहीं है, इसलिये प्रतिबंधक का अभाव होने से नित्यसूरि का ज्ञान सर्वदा विकसित रहने से विभु कहलाता है, तथा मिथ्या ज्ञान तथा पाप कर्मों से दूषित शरीर वाले बद्ध जीवों का ज्ञान कर्म के अनुसार संकोच विकाशवान् होने से सर्वदा अविभू ही रहता है । एवं "तीरं दृष्टवन्त:" (संसार के पार को देख लिया) इस वचन के अनुसार परमेश्वर की कृपा से संसार को पार करके संसार के अंतिम तीर को प्राप्त किये हुए जो मुक्त पुरुष हैं उनका जो ज्ञान हैं वह पूर्वावस्था में अर्थात् संसारावस्था में अव्यापक है क्योंकि कर्म प्रतिबद्ध है। और उत्तरावस्था में—मोक्षावस्था में कर्म रहित होने से विभु है।

"सर्वं पश्य: पश्यति (मोक्ष को प्राप्त किया हुआ जीव भगवान् की सभी लीलाओं को देखता है) इस वचन के अनुसार मुक्तों

का ज्ञान विभु होता है अन्यथा शास्त्र प्रतिपादित सर्व दर्शन अनुपपन्न हो जायेगा, इसलिये मुक्त जीव का ज्ञान कालकृत व्यापक भी है, तथा अविभु भी है। अर्थात् जो नित्यसूरि श्रीहनुमान् आदि हैं—जिन्होंने कभी भी संसार का अनुभव नहीं किया उन लोगों का जो ज्ञान है वह सर्वदा विभु है क्योंकि वे लोग भगवान् की सर्व प्रकार की विभूति का सर्वदा दर्शन करते रहते हैं इन महानुभावों का जो सकल दर्शन है वह ज्ञान के अविभु पक्ष में अनुपपन्न हो जायगा। इष्टापत्ति कह नहीं सकते हैं क्योंकि "अज्ञान शून्या अमरा" इत्यादि शास्त्र अप्रामाणिक हो जायगा। अतः नित्यसूरियो का ज्ञान विभु है, और सांसारिक कर्म प्रतिबद्ध जीवो का ज्ञान सर्वदा संकोच विकाश शील होने से सर्वदा अविभु है, और मुक्त जीव का ज्ञान काल विशेष में विभु है तथा काल विशेष में अविभु है।

प्रश्नः— जीव का जो धर्म ज्ञान है वह जीव स्वरूप की तरह नित्य है अर्थात् उत्पन्न विनष्ट नहीं होता है किन्तु एकरूप से ही रहता है ऐसा जो आपने कहा वह तो ठीक नहीं है क्योंकि जीव ज्ञान को नित्य मानें तब तो घट ज्ञान मुझ को हुआ "घटज्ञानमुत्पन्नम्" और पट का ज्ञान विनष्ट हो गया इत्यादि ज्ञान के उत्पाद विनाश विषयक जो प्रतीति होती है उसकी उपपत्ति किस तरह होगी। और उक्त प्रतीति सर्वलोकानुभव सिद्ध है इसलिये ज्ञान नित्य नहीं है?

उत्तरः— आत्मसमवेत जो जीव ज्ञान चक्षुरादि इन्द्रिय द्वारा बाहर निकलकर के घटादि विषय का ग्रहण करता है तथा कालान्तर में निवृत्त भी हो जाता है इसलिये उत्पन्नं ज्ञानं विनष्टं ज्ञानम् इत्यादि लौकिक व्यवहार होता है अर्थात् ज्ञान का आविर्भाव तिरोभाव मात्र होता है न तु ज्ञान का उत्पाद विनाश होता है। अयमाशयः—"मोक्षदशा में जीव सब वस्तु को देखता है वह जीव आनंत्य है" इससे यह सिद्ध होता है कि जीव का ज्ञान सर्व विषयक तथा सर्व पदार्थ को ग्रहण करने वाला है, "**यथा-क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृपसत्तम !** हेराजश्रेष्ठ ! सर्वत्र व्याप्त जीव की शक्ति जिस कर्म संज्ञक अविद्या से वेष्टित आवृत है" इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि जीव का ज्ञानरूपी जो शक्ति है वह कर्म से संकुचित है। "हे राजन् ! क्षेत्रज्ञ की वह शक्ति शक्ति कर्म से तिरोहित होने के कारण प्रत्येक प्राणियों में न्यूनाधिक भाव से रहती है," **अप्राणिमत्सु स्वल्पासा स्थावरेषु ततोधिका"** प्राण विवर्जित जो प्रस्तरादिक जीव है उनमें स्वल्प मात्रा में ज्ञान रहता है और स्थावर वनस्पत्यादिको में पूर्वापेक्षया कुछ अधिक मात्रा में ज्ञानशक्ति रहती है इससे सिद्ध होता है कि कर्म के तारतम्य प्रयुक्त ज्ञान में तारतम्य होता है तथा—

"इन्द्रियाणां हि सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्" ॥ इति ।

अर्थात्—यदि चक्षुरादिक कोई भी एक इन्द्रिय जब विषयोन्मुख होता है तो उस पुरुष का ज्ञान बाहर हो जाता है जिस तरह दतिः भिस्ती जलपात्र विशेष में एक जगह छेद हो जाने पर उस भिस्ती में रहा हुआ जो पानी है वह सब बाहर निकल जाता है उसी तरह एक भी इन्द्रिय के विषयोन्मुख होने पर ज्ञान विकसित हो करके विषय का ग्रहण करता है । इस वचन के अनुसार इन्द्रिय द्वारा ज्ञान बाहर निकल करके विषय का ग्रहण करता है तथा विषय ग्रहण से पुनः निवृत्त भी होता है एतादृश विकाश संकोच प्रयुक्त ज्ञान का विकाश तथा संकोच को लेकर के ज्ञान में उत्पत्ति का तथा विनाश का व्यवहार होता है न तु ज्ञान का उत्पात विनाश होता है अपितु आविर्भाव तिरोभाव ही होता है क्योंकि ज्ञान नित्य है । इन सब युक्तियों से ज्ञान में नित्यत्व सिद्ध होता है, तथा "नहि विज्ञातु विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते" नहि द्रष्टु र्दृष्टे र्विपरिलोपो विद्यते" अर्थात् विज्ञाता जो जीव है उसका जो विज्ञान अर्थात् धर्मभूत ज्ञान है तादृश ज्ञान का विपरिलोप विनाश नहीं होता है अविनाशी होने से । तथा द्रष्टा जो जीव उसका जो दृष्टि धर्मभूत विज्ञान उसका विपरिलोप विनाश नहीं होता है अविनाशी होने से । इन श्रुतियों से सिद्ध होता है कि जीव का जो धर्मभूत ज्ञान है वह नित्य है नहीं कहें कि विज्ञाता जो जीव तद्रूप जो ज्ञान उसका विनाश नहीं होता है ऐसा श्रुति का अर्थ है न तु विज्ञाता जो जीव उसके विज्ञान का लोप नहीं होता है, यहां "राहोः शिरः"

इसके समान अभेद में षष्ठी विभक्ति है, तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि 'देवदत्तस्य कंबलम्" इत्यादि सर्वत्र भेद अर्थ में ही षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होने से, प्रकृत में 'विज्ञातु र्विज्ञातेः' यहाँ षष्ठी को अभेदार्थक मानना अविदित शब्द शास्त्रवान् पुरुष को ही शोभित है। नहीं कहें कि—"देवदत्तस्य गन्तुः" इस स्थल में अभेदार्थक षष्ठी विभक्ति को मान कर के जिस तरह देवदत्त से अभिन्न गन्ता पुरुष यह अर्थ होता है उस तरह प्रकृत श्रुति में भी अभेदार्थक षष्ठी विभक्ति को क्यों नहीं माना जाय ?

उत्तर— एतादृश स्थल में अन्यथा निर्वाह नहीं होने से क्वचित् अभेदार्थक षष्ठी मान लें पर जब षष्ठी का भेद अर्थ मानने पर भी संगत हो जाता है तथा श्रुति का निर्वाह भी हो जाता है तब षठी का अभेद अर्थ मानना अनुचित है। एवं ज्ञान को नित्य मानने में स्मृति भी प्रमाण है—

"ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्च मनुजेश्वर ! ।
आत्मनो ब्रह्मभूतस्य नित्यमेतच्चतुष्टयम् ।।"

यथोदपान करणात् क्रियते न जलांबरम् ।
स देव नीयते व्यक्तिमसतः संभवः कुतः ।।

तथा हेयगुणध्वंसादवबोधादयो गुणाः ।
प्रकाशन्ते न जन्यन्ते नित्या एवात्मनो हि ते ।। इति ।

अर्थात्— हे मनुजेश्वर ! ब्रह्म भाव को प्राप्त किया हुआ इस जीवात्मा का अर्थात् अविद्या कर्मादिक सकल हेय गुण को

त्याग कर के निर्मल स्वरूप प्राप्त इस जीव का ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य, और धर्म ये चारों ही पदार्थ नित्य हैं उत्पाद विनाश रहित हैं। जिस तरह कूप तडाग प्रभृतिक उदपान जलाशय को बनाने से तदन्तर्गत आकाश नहीं बनाया जाता है किन्तु पृथिवी के अन्तर्गत जो जल है वही अभिव्यक्त होता है अर्थात् सत्य पदार्थ का ही आविर्भाव होता है। असत्य पदार्थ का आविर्भाव नहीं होता है। गीता में श्रीकृष्ण ने भी कहा है–"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" इति। उसी तरह कारण बल से हेय गुण कर्मादि पदार्थों का ध्वंस हो जाने पर नित्य जो ज्ञानादिक गुण समुदाय हैं वे सब प्रकाशित होते हैं किन्तु उत्पन्न नहीं होते हैं। जिस तरह तिल में अनागतावस्थ तेल विद्यमान रहता है तभी पुरुष व्यापार के द्वारा तिलों से तेल अभिव्यक्त होता है न तु सिकता–रेती से तेल का प्रादुर्भाव होता है तथा तिल में से तैल जनित नहीं होता है किन्तु अभिव्यक्त मात्र होता है। इसी तरह ज्ञानादिक नित्य गुण प्रतिबंधकों का विनाश हो जाने पर आत्मा में अभिव्यक्त मात्र होता है किन्तु उत्पन्न नहीं होता है। इन उपर्युक्त श्रुति स्मृतियों से सिद्ध होता है कि–आत्मा का ज्ञानादिक गुण नित्य है जन्य नहीं।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में ज्ञान को द्रव्य माना गया है प्रदीपप्रभा के समान परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि न्याय

सिद्धान्तवादी लोग तो रूपादि से लेकर के संस्कारान्त पदार्थों को गुण मानते है अर्थात् चौबीस गुण मानते हैं जिस के अन्तर्गत ज्ञान भी एक गुण ही है तब ज्ञान द्रव्य किस तरह हो सकता है क्योंकि **"अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेयानिर्गुणा निष्क्रया गुणा:"** ऐसा उन नैयायिकों का कथन है यदि ज्ञान भी घटादिवत् द्रव्य होगा तब तो घट में रूपादिक गुण की तरह ज्ञान में भी रूपादि अन्यतम: गुणों की उपलब्धि होनी चाहिये वह तो नहीं होती है अर्थात् ज्ञान में रूपादिक गुणों का उपलंभ नहीं होता है।

उत्तर–न्याय सिद्धान्तवादी क्रियाश्रयत्व तथा द्रव्य समवायि कारणत्व ये प्रत्येक द्रव्य को स्वतन्त्र माने हैं तो संकोच विकाश रूप क्रिया ज्ञान में उपलब्ध होता हैं तथा संयोग विभाग पृथक्त्व परापरत्वादिक अन्यतम गुणों का ज्ञान में उपलंभ होने से ज्ञान को द्रव्य माना जाता है। एवं अजड होने से ज्ञान को द्रव्य माना जाता है अजड कहते हैं स्वप्रकाश को तो ज्ञान स्वप्रकाश है इसलिये द्रव्य है क्रिया का आश्रय जो हो उसको द्रव्य कहते हैं ऐसा द्रव्य का लक्षण करने से क्रियाश्रयत्व तथा गुणाश्रयत्व यह प्रत्येक द्रव्यत्व का साधक सिद्ध होता है। तथा क्रियाश्रयत्व गुणाश्रयत्व के साथ–साथ अजडत्व का भी कथन होने से अजडत्व भी द्रव्यत्व का साधक सिद्ध होता है। अजडत्व हेतु वक्ष्यमाण प्रकार से द्रव्यत्वका साधक होता है तथाहि जो जड

पदार्थ हैं घटादिक वे तो कोई द्रव्य कहलाते हैं जैसे मृत्पाषाणादिक जड हैं तो ये द्रव्य हैं मृत्तिका रूप तथा जड पदार्थ हैं आत्मा भिन्न जलादिक वे सब द्रव्य है तथा जो जड वस्तु हैं उनमें कोई कोई अद्रव्य भी होते हैं जिस तरह गुण कर्मादिक ये सब द्रव्य भिन्न हैं, परन्तु जो पदार्थ अजड पदार्थ होते है उनमें अद्रव्य नहीं होते है, यथा आत्मा अज़ड जड भिन्न वस्तु है तो आत्मा अद्रव्य नही है किन्तु सर्वानुमत से द्रव्य है इस लिये ज्ञानरूप जो पदार्थ है वह द्रव्य है क्योंकि अजड जड भिन्न होने से जिस तरह आत्मा अजड है तो वह द्रव्यरूप है इसी तरह ज्ञान भी अजड है तो वह भी द्रव्य ही है यहां "ज्ञानम् द्रव्यम् अजडत्वात् यदजडं भवति तद् द्रव्यं यथा आत्मा" इस अनुमान में ज्ञान है पक्ष द्रव्यत्व है साध्य अज़डत्वात् है हेतु यदजड तद्द्रव्यम् यह व्याप्ति स्वरूप का अभिनय है आत्मा यह व्याप्ति ग्राहक दृष्टान्त प्रदर्शन परक वाक्य है। जिस तरह महानसरूप दृष्टान्त में वह्नि धूम की व्याप्ति का निश्चय कर के गृहीत व्याप्तिक धूम से सन्दिग्ध पर्वत में धूम को देखकर व्याप्ति का स्मरण करने पर 'वह्निव्याप्य धूमवानयं पर्वतः' इत्याकारक परामर्श से पर्वत में वह्नि का निश्चय होता है इसी तरह आत्मारूप दृष्टान्त में द्रव्यत्व अजडत्व की व्याप्ति निश्चयकर के गृहित व्याप्तिक अजडत्त्व हेतु से ज्ञानरूप पक्ष में अजडत्व ज्ञान के बाद द्रव्यत्व व्याप्य अजडत्ववान् ज्ञानम् इत्याकारक

परामर्श के द्वारा ज्ञानरूप पक्ष में द्रव्यत्व की सिद्धि होती है इति तु न्यायविदां राजमार्ग: । अत एव सांप्रदायिक प्राचीनार्वाचीनाचार्यों ने भी कहा है कि यह ज्ञान अजड होने से संकोच विकाश रूप क्रिया का आश्रय होने से और संयोग विभागादिक गुणों का आश्रय होने से द्रव्य है, ऐसा सिद्ध होता है ।

प्रश्न:-यदि आप उपर्युक्त युक्ति तर्कादिकों के द्वारा ज्ञान में द्रव्यत्व को सिद्ध करते हैं तब आत्मारूप द्रव्य का ज्ञान गुण है यह प्रवाद किस तरह संगत होगा ? क्योंकि द्रव्यरूप जो घटादिक पदार्थ है वे किसी द्रव्यान्तर के गुण नहीं होते है द्रव्यत्व तथा गुणत्व में छाया प्रकाश के समान विरोध है सहानवस्थान का नाम ही तो विरोध है तब एक ज्ञान में द्रव्यत्व तथा गुणत्व नहीं रह सकता है तब ज्ञान को आत्मगुण कहना अनुचित जैसा प्रतीत होता है ?

उत्तर–ज्ञान नियमत: आत्मा में आश्रित है इसलिये आत्मा का गुण कहलाता है अर्थात् यावत् पर्यन्त उपलभ्यमान होता है तावत् पर्यन्त आत्मा में ही आश्रित रहता है ऐसा ही देखने में आता है इसलिये ज्ञान द्रव्य होता हुआ भी आत्मा का गुण कहलाता है किन्तु नैयायिक मतवत् गुणत्वाश्रय होने से गुण नहीं कहलाता है जिससे द्रव्य में गुणत्व कथन अयुक्त होता प्रदीप प्रभा की तरह अर्थात् जिस तरह प्रदीप की प्रभा नियमत: प्रदीप का गुण है तथा संयोग विभागादिक गुण तथा गच्छति आगच्छति इत्यादि क्रिया के आश्रय होने से प्रविरल तेजो अवयवक द्रव्यरूप

है उसी तरह प्रकृत में नित्य द्रव्याश्रित होने के कारण ज्ञान आत्मा का गुण है तथा गुण क्रिया का आश्रय होने से द्रव्य भी है। अर्थात् संकोचादिक क्रियावान् होने से एवं संयोग विभागादिक गुणवान् होने से ज्ञान द्रव्य कहलाता है तथा द्रव्य में नियमतः आश्रित होने से गुण भी कहलाता है। आश्रय में नियमतः रहता है, इसका अर्थ है कि द्रव्य के विना नहीं रहता है तथा द्रव्य की सत्ता में ही रहता है अर्थात् द्रव्य समवेत है द्रव्य के साथ अविष्वग्भाव संबन्ध से रहता है। अतः एक अपेक्षा से द्रव्यत्व भी है और अपेक्षान्तर से गुणत्व भी रहता है। जिस तरह द्रव्यत्व जाति में सत्ता की अपेक्षा से अपरत्व रहता है तथा पृथिवीत्वादिक की अपेक्षा से परत्व रहता है तो आपेक्षिक उभय धर्म के समावेश होने से एक ही द्रव्यत्व में परत्व अपरत्व उभय धर्म के समावेश होने से तदुभय अविरुद्ध है उसी तरह ज्ञान में आपेक्षिक द्रव्यत्व तथा आपेक्षिक गुणत्व के सद्भाव होने से ज्ञान में द्रव्यत्व तथा गुणत्व एतदुभय अविरुद्ध है। विशेष विवेचन अन्यत्र देखें। ग्रन्थ गौरवभय से यहाँ संक्षेप किया गया है।

प्रश्नः— यदि ज्ञान स्वप्रकाश है तब तो जिस तरह जागृत अवस्था में प्रकाशित होता है उसी तरह मूर्छा अवस्था में तथा सुषुप्ति काल में भी प्रकाशित होना चाहिये स्वप्रकाशक होने से।

उत्तर—ज्ञान स्वप्रकाश है, इसका मतलब यह है कि—ज्ञान विषय ग्रहण समय में ही स्वयमेव प्रकाशित होता है न तु सर्वदा

मूर्छा सुषुप्ति काल में तो तमो गुण से अभिभूत होने के कारण से संकुचित रहता है अत: स्वयं प्रकाश नहीं हैं। जिस तरह सूर्य मणि प्रभृति का प्रकाश तिरोहित रहने से प्रकाशित नहीं होता है उसी तरह प्रकृत में भी जानिये!

जिस तरह ज्ञान नित्य द्रव्य तथा अजड स्वप्रकाशरूप हैं उसी तरह ज्ञान आनन्द सुखस्वरूप भी है ज्ञान को प्रकाश काल में अनुकूलरूप से प्रतिभा समानत्व ही आनंदरूपत्व है अर्थात् प्रकाशकाल में स्वाश्रय के विषय के प्रकाशन समय में ही यह प्रकाशित होता है, उस अवस्था में तत्तत् विषयों के अनुकूलत्वेन भान होने से उन विषय करने वाले इस ज्ञानाश्रय को सुखरूपत्व होता है। नहीं कहे कि तब तो विषादि दर्शन काल में विषादि विषय ज्ञान को प्रतिकूल नहीं होना चाहिये परन्तु बिषादि ज्ञान में तो सब को प्रतिकूलत्व ही भासित होता है सो कैसे होता है! यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि विषादि ज्ञान काल में जो बिषादिक पदार्थों में प्रतिकूलत्व अवगत होता है उसका कारण है देहात्मभ्रमादिक, अर्थात् विषादि ज्ञान काल में जो विषादिक पदार्थ में दु:खरूपत्व का प्रतिभास होता है उसका कारण है बाधक ज्ञानमूलक देहात्मभ्रम तथा शुभाशुभ कर्म परमेश्वरात्मक स्वाभाव ज्ञान, अर्थात् "जगत्सर्वं शरीरं ते थैर्यं च वसुधा तलम्" अर्थात् हे भगवन्! यह संपूर्ण जगत् आपका शरीर है "तानि सर्वाणि तद्वपु:" परिदृश्यमान सकल पदार्थ भगवान् का शरीर है

तत्सर्वं वैहरेस्तनुः' आकाशादिक सकल पदार्थ भगवान् का शरीर शेष है इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि सकल पदार्थ भगवान् का शरीर तो भगवत् शरीरतया ज्ञायमान काल में पदार्थ मात्र का अनुकूलरूपेण ज्ञान होने से सभी पदार्थों का अनुकूलत्व ही स्वभाव है विषयादिक का भान समय में जो प्रतिकूलत्व अवगत होता है वह देहात्मभ्रम मूलक औपाधिक है। अर्थात् चेतना चेतनात्मक घट पट अनुकूल प्रतिकूल पदार्थ मात्र को भगवान् का शरीर है ऐसा कहने से परमेश्वरात्मकरूप से प्रतिभास मानता समय में सभी पदार्थ का अनुकूलरूप से ही ज्ञान होता है क्योंकि जब भगवान् सब के ईप्सिततम होने से सर्वदा अनुकूल रूप से ही प्रतिभासित होते है तब भगवान् का शेष भगवान् के साथ अविष्वग् रूप से प्रतिभासित पदार्थ मात्र का अनुकूलत्व रूप ही स्वभाव है। तब कुत्रचित् कदाचित् किसी विषादिक में जो प्रतिकूलता का प्रतिभास होता है वह देह में आत्मभ्रम मूलक औपाधिक ही है। जिस तरह आकाश स्व स्वभाव से एक व्यापक निर्मल स्वभाव वाला है परन्तु घट पट तथा पार्थिवमलादि रूप उपाधि से युक्त हो जाने पर यह घटाकाश है यह मठाकाश है इत्यादि रूप से आकाश में अनेकत्व व्यवहार घटादि उपाधि कृत है तथा घटरूप उपाधि को परिच्छिन्न होने से तत्संबन्धात् आकाश में अर्थात् घटाकाश में परिच्छिन्नत्व का औपाधिक व्यवहार हो जाता है तथा पार्थिव रजः कणादि रूप उपाधि

से उपहित होने पर 'आकाश मलिन है। यह व्यवहार-औपाधिक हैं। यथा वा—'आत्माज्ञानमयोऽमल:' आत्मा ज्ञानमय हैं तथा सर्वमल रहित है इस वचन से स्वभावत: सर्व उपाधि रहित होने पर भी अनादि काल अविद्यात्मक उपाधि के संबन्घ से देव मनुष्यादि रूप से व्यवहृत होता हैं तो यह यथोक्त व्यवहार औपाधिक है उसी तरह प्रकृत में भगवदात्मकतया पदार्थ मात्र में आनुकूल्य स्वाभाविक है विशेष में जो प्रतिकूलत्व है वह औपाधिक है।

प्रश्न—आपने कहा कि ईश्वरात्मकतया प्रत्येक पदार्थ में अनुकूलता स्वामाविक है प्रतिकूलता का प्रतिभास औपाधिक है यह कहना तो ठीक नहीं है क्यों कि चन्दन कुसुम माला वनिता दिक पदार्थ में भी तो अनुकूलता स्वाभविक ही है क्यों कि चन्दन वनितादिक प्रत्येक प्राणी के लिये सुखद है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि यदि परमेश्वरात्मकत्व प्रयुक्त जो अनुकूलता तादृश अनुकूलता से अतिरिक्त चन्दन वनितादि प्रदार्थों में भास मान जो आनुकूल्य वह चन्दनादि पदार्थो का स्वाभाविक आनुकूल्य मानें तब तो किसी भोक्ता को काल विशेष में तथा किसी देश विशेष में जो पदार्थ अनुकूल लगता है वही पदार्थ उसी पुरुष को देशान्तर कालान्तर में प्रतिकूल नहीं होना चाहिये क्योंकि उसमें अकूलता स्वभाविक है तब वह प्रतिकूल कैसे होगा ? तथा जिस देश जिस काल में जिसको पदार्थ सुखद प्रति भासित होता है

वही पदार्थ उसी काल में अन्य व्यक्ति को सुखद प्रतीत नहीं होता है किन्तु दुःखद प्रतीत होता है जैसे ऊंट को बबूल का कण्टक नीमका पत्ता खाने में अच्छा लगता है परन्तु तदतिरिक्त को अच्छा नहीं लगता है यथा वा निरोगव्यक्ति को घृताक्त भोजन परमप्रिय लगता है। परन्तु वही भोजन ज्वराक्रान्त को अच्छा नहीं लगता है। इसलिये चंदन वनितादिक पदार्थों में भगवदात्मकत्व व्यतिरेकेण अनुकूलता स्वाभाविक है यह कथन ठीक नहीं है किन्तु पदार्थ मात्र भगवान् के शरीर होने से भगवदात्मक है और भगवदात्मक होने से उन पदार्थों में अनुकूलत्व प्रतिभासमान होने से उन पदार्थों में जो अनुकूलत्व है सो पदार्थों का स्वाभाविक है और भगवदात्मकतया प्रति भासमान काल में जो प्रतिकूलताका भान होता है सो देहात्मभ्रम मूलक तथा परमेश्वरात्मक स्वाभावमूलक औपाधिक है। इस विषय में भगवान् श्रीपराशरजी का वचन भी प्रमाण है तथा हि—

"वस्त्वेकमेवदुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च।
कोपाय च ततस्तस्मादस्तु वस्त्वात्मकं कुतः॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते।
तदेव कोपाय ततः प्रसादाय च जायते॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किंचित्सुखात्मकम्। इति

अर्थात्—एक ही पदार्थ जो सांसारिक है वह देश काल विशेष में

दु:ख के लिये होता है और वही पदार्थ देशान्तर का लान्तर में उसी पुरुष को सुख के लिये होता है एवं उसी देश काल व्यक्त्यन्तर को सुख प्रयोजक होता है एवं वही पदार्थ चाहने वाले को भाग्य बलात् प्राप्त नही होने पर ईर्ष्या का कारण बन जाता है तथा वही पदार्थ क्रोध के लिये बन जाता है । इसलिये सुखादिक वस्तु पदार्थ का स्वरूप नहीं हो सकता है तथा पदार्थ सुख का प्रयोजक बन करके पुन: देश कालादि के बल से दु:ख का प्रयोजक वन जाता है। तस्मात् कोई भी पदार्थ न तो एकान्तत: दु:खात्मक है न वा एकान्तत: सुखात्मक है । इस प्रकार से श्री पराशर ऋषि ने विस्तारपूर्वक कहा है । इससे एक ही पदार्थ सुखात्मक है सत्वगुण के उत्कट काल में तथा वही पदार्थ रजो गुण के उत्कट काल में दु:खात्मक हो जाता है तथा वही पदार्थ तमो गुण के आधिक्य के समय में मोहात्मक होता है यह सांख्य मत का निराकरण किया गया, क्योंकि विषय पदार्थों का प्रतिकूलरूप से तथा चन्दनादि पदार्थों का अनुकूलरूप से जो भाव होता है वह देहात्म भ्रमादि कारण से है तस्मात् परमेश्वरात्मक तया सर्व पदार्थों का आनुकूल्य स्वभाव है । अत: ईश्वराकार से भान काल में सर्व विषयक ज्ञान आनन्दरूप है यह सिद्ध हुआ। एतादृश ज्ञान आत्मा का गुण है । इस प्रकार से तत्वत्रयान्तर्गत प्रथम चित्पदार्थ का निरूपण यथामति संक्षेप से किया गया ।।५७।।

॥ अथाचिदर्थनिरूपणम् ॥

अथ क्रमप्राप्तमचित्तत्त्वमभिधीयते–

अचिन्नाम ज्ञानविरहितं तत्त्वम् । तच्चावस्थान्तरापत्तिरूपविकाराश्रयरूपमत एव द्रव्यम् । तद्द्विविधम् जडाजडभेदात । तत्र परप्रकाश्यं जडम् । तद्भिन्नमजडम् ।१।

सर्वेश्वर श्रीरामजी का उपभोगार्ह चित् तत्त्व जीवात्मा के निरूपणानन्तर क्रम प्राप्त अचित् तत्त्व प्रकृति तत्त्व का निरूपण किया जाता है । अचित् तत्त्व उसे कहते हैं जो ज्ञान रहित द्रव्य तत्त्व हो । वह अचित् तत्त्व अवस्थान्तरित होता है यानी कार्य कलापानुसार समय समय पर घटता बढता रहता है अर्थात् उत्पत्ति स्थिति बृद्धि विपरिणति अपचय एवं नाश रूप छ प्रकार के कार्य कलापों वाला तथा विकार का आश्रय वाला हैं यानी "स्वरूपे च स्वभावे च विकारः प्रकृतेः खलु" इस जगद्गुरु श्रीद्वारानन्दाचार्यजी प्रणीत परिणाम विमर्श के निर्देसानुसार स्वरूप एवं स्वभाव दोनो में विकार होने वाला तत्त्व है इसलिये यह अचित् तत्त्व द्रव्य कहलाता है । वह अचित् तत्त्व जड तथा अजड के भेद से दो प्रकार का है । जड एवं अजड में से जो पर प्रकाश्य दूसरे से प्रकाशित होता है वहा जड द्रव्य है एवं जो तद् भिन्न स्वयं प्रकाशित होता है वह अजड द्रव्य है जैसे दिव्य धाम श्रीसाकेत आदि ॥१॥

अजडं द्विविधं पराक् प्रत्यक् भेदात् । तत्र स्वयं प्रकाशमानत्वे सति परस्मा एव भासमानत्वं पराक्त्वम् । परामपि द्विविधम् शुद्धसत्वज्ञानभेदात् ॥२॥

शुद्धसत्त्वम्

शुद्धसत्त्वंनाम त्रिगुणभिन्नं शुद्धसत्त्वगुणाधिकरणमचिद् द्रव्यम् । तन्नित्यमजडमधः प्रदेशे परिच्छिन्नमूर्ध्वप्रदेशे चान्तरहितम् । "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" (श्वे. उ०

पराक् एवं प्रत्यक् के भेद से अजड दो प्रकार का होता है। उन दोनों में से जो स्वयं अन्य साधन के बिना स्वयं प्रकाश मान होता हुआ पर को भी विभासित प्रकाशित करता है वह पराक् कहलाता है। शुद्धसत्व एवं ज्ञान के भेद से पराक् भी दो प्रकार का है ॥२॥

शुद्ध सत्व उसे कहते है जो सत्व रज एवं मत रूप तीन गुण वाली प्रकृति से भिन्न होकर भी गुण का अधिकरण आधार स्वरूप शुद्ध सत्व हो तथा वह अचिद् द्रव्य है। वह शुद्ध सत्व नित्य है तथा अजड है एवं अधः प्रदेश— एक पाद-विभूति में परिच्छिन्न सीमित है और ऊर्ध्व प्रदेश त्रिपाद विभूति में अन्त रहित अनन्त है। इस शुद्ध सत्व के होने में प्रमाण निम्न है —तमः शब्द से वाच्य प्रकृति मण्डल से पर परात्पर श्रीसाकेत लोक में स्थित आदित्य वर्ण निरतिशय उज्वलादि गुण विशिष्ट दिव्य मंगल विग्रह विशिष्ट सर्वतोधिक महत्व शाली सर्वेश्वर

३।८) "तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः" (ऋ. १।२२।२०-शु.य. ६।५) इत्यादिश्रुतयस्तत्र प्रमाणभूताः। तदीश्वरसंकल्पान्नित्यमुक्तेश्वराणां भोग्यभोगोपकरणभोगस्थानरूपं भवति। नित्यविभूतिनित्यधामपरमधामपरमव्योमाक्षरधामश्रीसाकेतादिशब्दाः शुद्धसत्त्वपर्यायाः ॥३॥

॥ ज्ञानम् ॥

अर्थप्रकाशो ज्ञानम्। तच्च प्रभावद् द्रव्यगुणात्मकम्

श्रीरामजी को जानता हूं' सर्व व्यापक सर्वाधार भूत श्रीरामजी के उस परम पद श्रीसाकेत धाम को साधना में सलग्न सूरिवर्ग आविर्भूत गुणाष्टक वाले साधक यानी अपहतपाप्मा सर्वदोष रहित विजर जरारहित विमृत्यु मृत्युरहित विशोक दोषरहित विजिघत्स अशना दोषरहित अपिपास पिपासारहित सत्यकाम एवं सत्य संकल रूप आठ गुणों को प्राप्त किये साधक लोक सर्वदा देखते हैं इत्यादि श्रुतियां प्रमाणरूप से मौजुद हैं। वह शुद्ध सत्व ईश्वर के संकल्प से नित्यमुक्त जीव एवं ईश्वर के लिये भोग्य भोग का उपकरण तथा भोग का स्थान यों तीनो ही होता है। नित्य विभूति नित्यधाम परमधाम परमव्योम अक्षरधाम श्रीसाकेतधाम आदि शब्द शुद्ध सत्व शब्द के पर्यायवाची हैं यानी ये सभी शब्द श्रीरामधाम के बोधक हैं ॥३॥

अर्थ विषयों को प्रकाशित करने वाले को ज्ञान कहते हैं वह प्रभा के समान द्रव्यरूप एवं गुणरूप दोनो ही है तथा अजड विभु द्रव्य है। वह ज्ञान ईश्वर एवं नित्य जीवों में सर्वदा विभु

जडंविभुद्रव्यम् । तच्चेश्वरस्य नित्यानां च सदैवविभुः मुक्तानां बद्धावस्थायां तिरोहितं मुक्तौ विभु बद्धानां तु तिरोहितमेव ॥४॥

ज्ञानं हि नित्यं द्रव्यम् "न हि विज्ञतु विंज्ञाते विंपरि लोपो विद्यते" (बृ० ४। ३।३०) इति श्रुतेः । "ज्ञानमुत्पन्नम्" "ज्ञानं नष्टम्" इत्यादिव्यवहारस्तु ज्ञानसम्बन्धिसंकोच-विकासावस्थाहेतुक एवेति ध्येयम् । ज्ञानं मतिः प्रजा संवित् धिषणा धीः मनीषा शेमुषी बुद्धिरित्यादयः शब्दा ज्ञान-पर्यायाः ॥५॥

व्यापक असंकुचित रहता है मुक्त जीवों में प्रथम बद्ध अवस्था में तिरोहित आवृत रहता है पर मुक्त अवस्थ में विभु असंकु-चित हो जाता है परन्तु बद्ध जीवों का ज्ञान तो तिरोहित ही रहता है ॥४॥

ज्ञान नाश न होने वाला नित्य द्रव्य है क्योंकि बाह्य एवं आभ्यन्तर के सभी स्वरूपों को अवगत करने वाले विज्ञान रूप विशेष शक्ति को नाश रहित होने से सर्वतो भावसे लोप नाश नहीं होता है इस प्रकार से श्रुति में वर्णन है अतः ज्ञान नित्य सिद्ध होता है । ज्ञान उत्पन्न हुआ' ज्ञान नाश हुआ इत्यादि उत्पन्न एवं नाश सम्बन्धि अनित्य व्यवहार तो ज्ञान सम्बन्धि ज्ञानविषयक संकोच तथा विकास के अवस्था को लेकर के होता है ज्ञान के अनित्य होने से नहीं ज्ञान तो नित्य ही है ऐसा जानना चाहिये । ज्ञान मति प्रज्ञा संवित् धिषणा धी मनीषा शेमुषी एवं बुद्धि आदि शब्द ज्ञान के पर्यायवाची शब्द हैं ऐसा जानना ।५।

परप्रकाश्यं जडमित्युक्तं प्राक् । जडं द्विविधं प्रकृतिकालभेदात् । तथा चोक्तं श्रौतसिद्धान्तबिन्दुकार श्रीश्रुतानन्दाचार्यचरणैः-

"अचिन्नाम तत्त्वं द्विधाज्ञानशून्यं,
जडञ्चाजडं नैवमिथ्याकदाचित् ।
जडं मिश्रसत्वं तथा कालतत्त्वं,
मनीषाऽजडं शुद्धरूपं च सत्त्वम्" इति ।

पीछले अचित् तत्त्व के विभाग प्रसंग में अजड तथा जड दो विभाग कर जड का लक्षण पर प्रकाश्य कहा गया था वह पर प्रकाश्य जड तत्त्व भी दो प्रकार का होता है प्रकृति तथा काल के भेद से इस तत्त्व के विभाग को श्रौतसिद्धान्त बिन्दु कार श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी ने निम्न प्रकार से कहा है- जड एवं अजड के भेद से अचित् नाम का तत्त्व दो प्रकार का है एवं वह ज्ञान से शून्य होने पर भी कदापि मिथ्या नहीं है। जड का शुद्ध मिश्र एवं शून्य तीन प्रकार का विकास होता है मिश्र सत्व यानी प्रकृति से महतत्त्व उस से सात्विक राजस तथा तामस भेद से तीन प्रकार का अहंकार तथा सात्विक अहंकर से पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय एवं उभयात्मक मन उत्पन्न होते हैं तामस अहंकार से शब्द स्पर्श रूप रस एवं गन्ध पांच तन्मात्राएं तथा पृथिवी अप तेज वायु एवं आकाश पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं। राजस अहंकार सात्विक तथा तामस दोनों का ही सहायक होता है। शून्य सत्व से भूत भविष्य आदि काल उत्पन्न होता है। शुद्ध सत्व अजड के रूप

अत्रमिश्रसत्वपदेनाविद्यामायाद्यपरपर्याया प्रकृतिरुक्ता ।६।

॥ प्रकृतिः ॥

प्रकृतिर्नाम सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयाश्रयरूपं द्रव्यम् । तत्र सत्वं नाम ज्ञान सुखतदुभयसङ्गोत्पादको गुणः । रजो नाम रागतृष्णाकर्मसङ्गोत्पादको गुणः । तमोनामविपरीत ज्ञानानवधानालस्यनिद्रोत्पादकोगुणः ॥७॥

उक्तञ्च श्रीतत्त्वसमुच्चयकारैराचार्यसार्वभौमैर्भगवद्भिः श्रीराघवानन्दाचार्यैः—

में प्रसिद्ध है वही नित्य बिभूति या पर धाम है तथा मनीषा ज्ञान आदि शब्द भी अजड शब्द से व्यवहृत होते हैं । इस श्लोक में आये मिश्र सत्व पद से अविद्या माया आदि पर्याय वाची शब्द वाली प्रकृति को कहा गया है ॥६॥

प्रकृति उसे कहते हैं जो सत्व गुण रजो गुण एवं तमोगुण नाम से प्रसिद्ध तीनो गुणों में आश्रित द्रव्य हो सात्विक राजस तथा तामस इन तीनों गुणों में से जो ज्ञान का उत्पादक या सुख का उत्पादक अथवा ज्ञान सुखात्मक दोनों का उत्पादक हो उसे सत्व गुण कहते हैं । तथा राग तृष्णा या राग तृष्णा रूप दोनों कर्म सम्बन्धी संगती के उत्पादक गुण को रजोगुण कहते हैं । एवं विपरीत उलटा ज्ञान असावधान आलस्य एवं निद्रा आदि के उत्पादक गुण को तमोगुण कहते है ॥७॥

तीन गुणो के चर्चा प्रसंग में आचार्य सार्वभौम जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजीने श्रीतत्त्व समुच्चय नामक प्रवन्ध में कहा है

"तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ! ॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय ! कर्म सङ्गेन देहिनम् ॥
तमस्त्वज्ञानं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्" (गीता १४।६-८)

इतिभगवद्वचनप्रामाण्यात् सत्त्वं नाम ज्ञानस्य सुखस्य तदुभयसङ्गस्य च जनको गुणः । रजोनाम रागतृष्णा कर्मणां सङ्गानां जनकोगुणः । तमो नाम विपरीतज्ञानानानवधानालस्य निद्राणां जनको गुणः" (श्रौततत्त्व समुच्चयः) इति ॥८॥

निष्पाप अर्जुन ! उन सत्वादि तीन गुणों में निर्मल एवं अनामय रोगादि से रहित सुखजनक एवं ज्ञानादि के प्रकाशक होने से सत्वगुण साधकों को सुख के संगों से एवं ज्ञान के संगों से बांधता है यानी सत्व गुण प्रसंग से साधक सुखी तथा ज्ञानी होता है। हे कौन्तेय ! तृष्णा के संग से समुद्भव रजो गुण को तुम रागात्मक कामना स्वरूप वाला जानो वह साधकों को कर्म संगति में बांध देता है। इसी प्रकार अज्ञान से जायमान तमो गुण को जानो जो सभी प्राणि वर्ग को मोहित्त कर देता है। इत्यादि भगवान के प्रामाणिक वचनों से यह बोध होता है कि ज्ञान का सुख का या ज्ञान एवं सुख दोनों के संग का उत्पादक जो होता है वह सत्व गुण है। राग तृष्णा एवं कर्म आदि संगों के जनक पैदा करने वाले गुण को रजो गुण कहते हैं। विपरीत उलटा ज्ञान असावधान आलस्य एवं निद्रा आदि के उत्पादक गुण को तमोगुण कहते हैं ॥८॥

प्रलये प्रकृतेस्त्रयोऽपि गुणाः साम्यमापन्ना एव भवन्ति । "तदैक्षत बहुस्याम्" इतीश्वरसङ्कल्पवशात् प्रकृतिर्गुणवैषम्यप्रयुक्तां कार्योन्मुखावस्थामवाप्याव्यक्तपद वाच्या भवति ॥९॥

महत्तत्त्वम्

अव्यक्तपदवाच्यायाः प्रकृतेर्यः प्रथमोविकारः स महान् । स च त्रिविधः । सात्विकराजसतामसभेदात् ।१०।

प्रलय काल में प्रकृति के सत्व रज एवं तम तीनों ही गुण साम्य अवस्था को प्राप्त कर जाते हैं अतः किसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं होती है। जब मैं एक हूं बहुत होजाऊ इस प्रकार से सृष्टि हेतु ईश्वर ने संकल्प किया तो प्रकृति अपने गुणों के विषमता जनित कार्योत्पादकता कार्यों को उत्पन्न करने की अवस्था को प्राप्त कर के अव्यक्त नाम वाली हो जाती है यानी प्रलय में क्षोभ रहित होने से तीनों गुणों के समान अवस्था प्राप्त कर शान्त रूप से स्थित प्रकृति सृष्टि हेतु ईश्वर के संकल्प से क्षोभिता होकर सृष्टि के लिये उद्यतहो जाती है उस समय उसका नाम अव्यक्त होता है जिसके द्वारा महतत्त्व आदि की सृष्टि सम्पन्न होती है ॥९॥

अव्यक्त पद से कथित अव्यक्त नाम वाली प्रकृति का सृष्टि क्रम में जो पहला विकार होता है वह महान् महत्तत्त्व कहलाता हैं तथा सात्विक राजस एवं तामस यानी सत्व गुण रजो गुण तथा तमो गुणों के भेद से महत्तत्त्व भी सात्वक राजस एवं तामस रूप से तीन प्रकार का होता है ॥१०॥

॥ अहङ्कारः ॥

महतः प्रथमो विकारोऽहङ्कारः । सोऽपि सात्विकादि भेदात् त्रिविधः । एते सात्विकराजसतामसाख्या अहङ्काराः क्रमाद् वैकारिकतैजसभूतशब्दैरप्यभिधीयन्ते ॥११॥

॥ एकादशेन्द्रियाणि ॥

राजसाहङ्कारसहकृतात् सात्विकाहङ्कारादेकादशेन्द्रियाणि जायन्ते तानि द्विविधानि । ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि च ॥१२॥

ज्ञानप्रसरणेशक्तानीन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि । तानिषड् विधानि मनः श्रोत्रं त्वक्चक्षूरसनं घ्राणञ्चेति ।

महत्तत्त्व का पहला विकार अहंकार है । अहंकार भी कारण गुण के अनुरोध से तीनों गुणों से युक्त होता है अतः सात्विक अहंकार राजस अहंकार एवं तामस अहंकार के भेद से तीन प्रकार का होता है । ये सात्त्विक अहंकार राजस अहंकार तथा तामस अहंकार क्रमश वैकारिक तैजस तथा भूतनाम से भी कहे जाते हैं अर्थात् सात्विक अहंकार को वैकारिक राजस अहंकार को तैजस एवं तामस अहंकार को भूत शब्द से भी प्रसगं या प्रकरणादि में व्यवहार होता है ॥११॥

राजस अहंकार के सहायता से सात्विक अहंकार से ग्यारह इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं वे ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय के भेद से दो प्रकार के होती हैं ॥१२॥

ज्ञान कराने में समर्थ इन्द्रिय गुणों को ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं वे मन श्रोत्र त्वचा आंख जिह्वा एवं नाक के भेद से छ प्रकार के

तत्रस्मृत्यादिकरणमिन्द्रियं मनः । हृदयदेशवृत्तिः । शब्दमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रियं श्रोत्रम् । कर्णशष्कुलीवृत्तिः । सर्पाणां तु नेत्रगोलोकवृत्तिः । स्पर्शमात्रग्रहण समर्थमिन्द्रियं त्वक् । सर्वशरीरवृत्तिः । रूपमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रियं चक्षुः । नेत्र वृत्तिः । रसमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रियं रसनम् जिह्वाग्र वृत्तिः । गन्धमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रियं घ्राणम् । नासाग्र वृत्तिः ॥१३॥

उच्चारणाद्यन्यतमकर्मसमर्थानीन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि । तानि पञ्चविधानि वाक् पाणि पाद पायूपस्थभेदात् ।

हैं। उन छ प्रकार के ज्ञानेन्द्रियों में से स्मृति स्मरण आदि के साधन भूत इन्द्रिय को मन कहते हैं वह हृदय प्रदेश में रहता है। केवल शब्द के ही ग्रहण में समर्थ ईन्द्रिय को श्रोत्र कहते हैं वह मनुष्यादि में कान के साथ सम्युक्त आकाश में रहता है पर सर्प के नेत्र गोलक में रहता है । केवल स्पर्श मात्र के ग्रहण में समर्थ इन्द्रिय को त्वचा कहते हैं वह सर्व शरीर में रहता है। रूप मात्र के ग्रहण में समर्थ इन्द्रिय को चक्षु कहते हैं वह आंख में रहता है। केवल रस के ग्रहण में समर्थ इन्द्रिय को रसना कहते है वह जीभ के अग्रभाग में रहता है। गन्ध मात्र के ग्रहण में समर्थ इन्द्रिय को घ्राण कहते है वह नाक के अग्रभाग में रहता है ॥१३॥

उच्चारण वोलना कार्य करना चलना आदि कार्यों में समर्थ इन्द्रियों को कर्मेन्द्रिय कहते हैं वे वाक् पाणि पाद पायु

तत्रोच्चारणकरणमिन्द्रियं वाक् । हृदयादिस्थानाष्टक वृत्तिः । शिल्पादिकरणमिन्द्रियं पाणिः । अङ्गुल्यादिवृत्तिः । सञ्चारकरणमिन्द्रियं पादः । चरणादिवृत्तिः । मलोत्सर्जन-करणमिन्द्रियं पायुः । गुदादिवृत्तिः । मैथुनकरणमिन्द्रिय मुपस्थः । मेहनादिवृत्तिः ॥१४॥

ॐ तन्मात्रापञ्चकं भूतपञ्चकञ्च ॐ

राजसाहङ्कारसहकृतात् तामसाहङ्काराच्छब्दतन्मात्र मुत्पद्यते । तन्मात्रं नाम भूतोपादानं द्रव्यम् । तत्

एवं उपस्थ के भेद से पांच प्रकार के हैं । उन पाँच प्रकार के कर्मेन्द्रियों में उच्चारण कार्यों में साधन भूत इन्द्रिय को वाक् वाणी कहते हैं वह हृदय आदि आठ स्थानों पर रहती है । शिल्पी हाथों से विविध कार्य करने में समर्थ इन्द्रिय को पाणि कहते हैं वह अंगुली के अग्रभाग में रहता है । संचरण के साधन रूप इन्द्रिय को पाद कहते हैं वह चरणों में रहता है । मलत्याग करने के साधन रूप इन्द्रिय को पायु कहते हैं वह गुदा में रहता है । मैथुनादि के साधन रूप इन्द्रिय को उपस्थ कहते हैं वह मेहन में रहता है ॥१४॥

राजस अहंकार के सहायता से तामस अहंकार से शब्द तन्मात्रा उत्पन्न होती है । भूतों के पृथिवी अप् तेज वायु एवं आकाश ये पंच महाभूत हैं इन के उपादान जिनसे कोई वस्तु वने या उपन्न हो उसे उपादान कहते हैं विशिष्टाद्वैत वेदान्त

पञ्चविधं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धभेदात् । विशिष्टशब्दादि गुणाश्रयो भूतम् । तदपि पञ्चविधमाकाशवायुतेजोऽपूपृथिवीभेदात् ॥१५॥

तत्र तामसाहङ्काराव्यवहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं शब्दतन्मात्रम् । तस्मादाकाशमुत्पद्यते । रूपरहितं विशिष्ट-शब्दाधिकरणं द्रव्यमाकाशम् । तच्च शब्द गुणकम् ॥१६॥

प्रक्रिया के अनुसार अविभक्त नाम एवं रूप बाले चित् तथा अचित् शरीर वाले पर ब्रह्म श्रीरामजी ही विभक्त नाम एवं रूप वाले चित् तथा अचित् शरीर वाले का कारण हैं अतः कारण एवं कार्य की एकरूपता होने से सभी नित्य हैं अनित्य या मिथ्या इस मत में कुछ भी नहीं है । तो भूतों के उपादान द्रव्य को तन्माात्रा कहते हैं यानी भूतों के उत्पत्ति से पूर्व सूक्ष्मरूपतया कारण स्वरूप में जो हो उसे तन्मात्रा कहते हैं अर्थात् भूतों के उत्पत्ति कारण का नाम तन्मात्रा है। वह पांच प्रकार का होता है शब्द तन्मात्रा स्पर्श तन्मात्रा रूपतन्मात्रा रस तन्मात्रा एवं गन्ध तन्मात्रा के भेद से! शब्द स्पर्श रूप रस एवं गन्ध रूप विशेष गुणों के आश्रय को भूत कहते हैं। वह भी पांच प्रकार का होता है आकाश वायु तेज जल तथा पृथिबी के भेद से ॥१५॥

पूर्वोक्त उन पाच तन्मात्राओं में से तामस अहंकार से अव्यवहित व्यवधान रहिन उत्तर अवस्था में स्थित विशेष द्रव्य को शब्द तन्मात्रा कहते हैं उसी से आकाश उत्पन्न होता है । जो रूप से रहित तथा विशिष्ट शब्द का अधिकरण आधार हो ऐसे द्रव्य को आकाश कहते हैं। वह शब्द गुण वाला होता है ॥१६॥

आकाशाव्यवहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं स्पर्शतन्मात्रम् तस्माद् वायुरुत्पद्यते । रूपरहितं विशिष्टस्पर्शवद् द्रव्यं वायुः । स च शब्दस्पर्शगुणकः । वायोः स्पर्शोऽनुष्णाशीतोऽस्तीति बोध्यम् । देहधारको वायुविशेषः प्राणः । स पञ्चविधः । प्राणापानव्यानोदानसमानभेदात् । तत्र प्राणो हृदयवृत्तिरपानोगुदवृत्तिर्व्यानः सर्वशरीरवृत्तिरुदानः कण्ठवृत्तिः समानश्च नाभिवृत्तिरिति बोध्यम् ॥१७॥

शब्द गुण वाले आकाश से अव्यवहित दूसरा कोई व्यवधान रहित उत्तर अवस्था में होने वाले विशिष्ट द्रव्य का नाम स्पर्श तन्मात्रा है उस स्मर्शतन्मात्रा से वायु उत्पन्न होता है । रूप से रहित विशिष्ट स्पर्श वाले द्रव्य को वायु कहते है वह शब्द एवं स्पर्श दो गुण वाला होता है । वायु का स्पर्श अनुष्णाशीत—गरम एवं ठण्डी से रहित सम भाव वाला होता है गरम के संयोग से गरम तथा ठण्डे के संयोग से ठण्डा का अनुभब होता है पर वह स्वभावतः समशीतोष्ण है । देह को धारण करने वाले विशेष प्रकार के वायु यो प्राण कहते है वह प्राण अपान व्यान उदान तथा समान वायु इन नामों एवं भिन्न भिन्न क्रिया से पांच प्रकार का हो जाता है । उन पांच में से प्राण नामक वायु हृदय में रहता है । अपान गुदा प्रदेश में रहता है । व्यान वायु सवशरीर में रहता है । उदान कण्ठ प्रदेश में रहता है एवं समान वायु नाभि प्रदेश में रहता है ऐसा जानना चाहिये ॥१७॥

वाय्यव्यवहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं रूपतन्मात्रम् । तस्मात्तेजउत्पद्यते । उष्ण स्पर्शवद्द्रव्यं तेजः । तच्च शब्द स्पर्शरूपगुणकम् । तेजसोरूपम् भास्वरं शुक्लमिति बोध्यम् ॥१८॥

तेजोऽव्यवहितोत्तरावस्था विशिष्टं द्रव्यं रसतन्मात्रम् । तस्मादाप उत्पद्यन्ते । शीतस्पर्शवत्य आपः । शब्दस्पर्शरूप-रसा अपां गुणाः । अपां रूपमभास्वरं शुक्लं रसश्च मधुर इति बोध्यम् ॥१९॥

वायु से अव्यवहित उत्तर अवस्था में होने वाले विशिष्ट द्रव्य को रूप तन्मात्रा कहते हैं उससे तेज उत्पन्न होता है । गरम स्पर्श वाले द्रव्य को तेज कहते हैं या गरम स्पर्श तेज का स्वाभाविक धर्म है तो गरम स्पर्श वाले को तेज कहने हैं । वह शब्द स्पर्श तथा रूप ये तीन गुण वाला होता है । तेज का रूप भास्वर—चमकिला चमकदार शुक्ल होता है ऐसा जानना चाहिये ॥१८॥

तेज से व्यवधान रहित उत्तर अवस्था में होने वाले विशिष्ट द्रव्य को रसतन्मात्रा कहते हैं उस रस तन्मात्रा से आप—पानी उत्पन्न होता है । शीत ठण्डास्पर्श वाले द्रव्य को पानी कहते हैं या पानी का स्वाभाविक धर्म शीत स्पर्श है गरम उसका पर सम्पृक्त औपाधिक है तो शीत स्पर्श वाले को पानी कहते हैं । शब्द स्पर्श रूप एवं रस पानी के गुण हैं । पानी का रूप अभास्वर नहीं चमकने वाला शुक्ल है तथा मधुर रस है ऐसा जान ना चाहिये ॥१९॥

अवव्यवहितोत्तरावस्था विशिष्टं द्रव्यं गन्धतन्मात्रम् । तस्मात् पृथिव्युत्पद्यते विशिष्टगन्धवद् द्रव्यं पृथिवी । सा च शब्दादिगुणपञ्चकशालिनी । पृथिव्यां स्पर्शोऽनुष्णाशीतो रूपं शुक्लरक्तकृष्णपीतेति चतुर्विधं रसो मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात् षड्विधोगन्धो सुरभ्यसुरभीतिद्विविधः । तत्र रूपमभास्वरशुक्लमिति बोध्यम् । पृथिव्या रूपरसगन्ध स्पर्शाः पाकनिमित्तकाः ॥२०॥

पानी से अव्यवहित उत्तर काल में होने वाला द्रव्य विशेष को गन्ध तन्मात्रा कहते हैं उससे पृथिवी उत्पन्न होती है । विशिष्ट गन्ध से युक्त द्रव्य को पृथिवी कहते हैं यानी गन्ध वाले द्रव्य को पृथिवी जानना वह शब्द स्पर्श रूप रस एवं गन्ध इन पांचों गुणों से युक्त है । पृथिवी में अनुष्णाशीत स्पर्श रहता है अर्थात पृथिवी का स्पर्श गरम भी नहीं तथा ठण्डा भी नहीं समभाव का होता है शीत एवं ऊष्ण स्पर्श परौपाधिक हैं यानी अग्नि आदि के संयोग से गरम तथा पानी के संयोग से ठण्डा का अनुभव होता है । पृथिवी में शुक्ल रक्त कृष्ण एवं पीत के भेद से चार प्रकार का रूप होता है । और मधुर आम्ल लवण कटु कषाय एवं तिक्त के भेद से छ प्रकार का रस होता है तथा सुरभी सुगन्ध एवं असुरभी दुर्गन्ध के भेद से दो प्रकार का गन्ध होता हैं । पृथिवी में अभास्वर शुक्ल रूप होता है । पृथिवी में स्थित रूप रस गन्ध एवं स्पर्श पाक से जायमान होते हैं स्वतः नहीं ॥२०॥

सर्वेश्वरोभगवान् श्रीरामोभूतसृष्टिं विधायैकैकस्य भूतस्य समानभागद्वयं कृत्वैकं विहायापरस्य समानभागचतुष्टयं विधायैकैकतदर्धातिरिक्तेषु भूतार्धेषु संयोजयति। एतदेव भूतानां पञ्चीकरणम् ॥२१॥

अत एवाकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु शब्दादीनां सर्वेषां गुणानामुपलब्धिः। इत्थं सर्वभूतेषु सर्वभूतानां विद्यमानत्वेऽपि पृथिव्यादिव्यपदेशः स्वभागस्यभूयस्त्वादपरभागस्य

सृष्टि के प्रारंभ काल में सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पृथिवी अप तेज वायु एवं आकाश इन पांच भूतों की सृष्टि कर के एक एक पृथिवी आदि पांचों भूतों का समान समान रूपसे दो दो भाग कर के उनमें से एक एक भाग को छोडकर दूसरे भाग के समान रूप से चार चार भाग कर के उन पांचों भूतों के आधेभाग में पृथिवी आदि के चतुर्थभाग को मिला देते हैं इसी प्रक्रिया को भूतों की पञ्चीकरण प्रक्रिया कहते हैं ॥२१॥

इसीलिये पंचीकरण प्रक्रिया से पांचों भूतों का मिश्रण है अतः आकाश वायु तेज जल पृथिवी सभी पांचों भूतों में शब्द स्पर्श रूप रस एवं गन्ध सभी गुणों की उपलब्धि होती है। इस पंचीकरण प्रक्रियानुसार आकाशादि पांचों भूतों में पांचों के रहने पर भी एक एक भूत में पृथिवी जल आदि का व्यवहार पृथिवी आदि का भाग अधिक अन्य जलादि का भाग कम होने से होता है ऐसा जानना चाहिये। वेद छान्दोग्य उपनिषद्प्रभृति में त्रिवृत करण प्रक्रिया का उपदेश है वह पंचीकर एवं सप्तीकरण

चाल्पीयस्त्वादेवेति बोध्यम् । वेदे त्रिवृत्करणोपदेशः पञ्चीकरणसप्तीकरयोरप्युपलक्षणम् ॥२२॥

卐 कालः 卐

भूतादिव्यवहारजनको गुणत्रयशून्यो जडद्रव्यविशेषः कालः । अखण्डकालोनित्योविभुपरिमाणश्च । निमेषादि रूपस्त्वनित्यः ॥२३॥

उक्तश्चाचित्तत्त्वमधिकृत्यापरबोधायनाचार्य जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्य वेदान्तविद्यानिधिभिः प्रमिताक्षराकारैर्योग पञ्चके—

का भी उपलक्षण बोधक है । त्रिवृत करण में ऊपर्युक्त पंचीकरण प्रणाली के अनुसार पृथिवी अप एवं तेज का संमिश्रण होता है तथैव सप्तीकरण में पृथिवी अप तेज वायु आकाश मन एवं बुद्धि का मिश्रण होता है ॥२२॥

भूत भविष्य वर्तमान दिन निमेष आदि व्यवहार का जनक कारण सत्व रज तथा तम तीनो गुणों से रहित जड द्रव्य को काल कहते हैं । खण्ड काल एवं अखण्ड भेद से काल दो प्रकार का होता है अखण्ड काल नित्य एवं विभु व्यापक परिमाण वाला होता है । निमेष मुहूर्त दिन पक्ष मास आदि खण्ड काल अनित्य होता है ॥२३॥

अचित् तत्त्व के प्रसंग में प्रमिताक्षरावृत्तिकार अपर बोधायनाचार्य जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी वेदान्त विद्यानिधि ने

"चिदात्माभिहितो द्रव्यं चतुर्धाऽचिदचेतनम् ।
जीवेशयोर्गुणो ज्ञानमर्थाभासोऽजडं विभु ॥१९॥
संकोच्यः कर्मणानित्योऽन्तरङ्गं भक्तिसाधनम् ।
शुद्धसत्वगुणा नित्यविभूतिरजडा मता ॥२०॥
कालवश्या तथा विभ्वी भोग्य भोगस्थलादिका ।
सत्वादिरहितः कालोविभुर्जडो हरे स्तनुः ॥२१॥
कालभिन्ना जडा नित्या प्रकृतिस्त्रिगुणाश्रया ।
तद्विकारो महानाद्यस्तद्भेदाः सात्विकादयः ॥२२॥

भी योग पंचक प्रबन्ध में कहा है—विशिष्टाद्वैत मतानुसार जीव ईश्वर प्रकृति काल नित्यविभूति एवं धर्मभूत ज्ञान छ द्रव्य माने गये हैं चित् पद से चेतन जीवात्मा तथा परमात्मा इन दो द्रव्य का बोध होता है अचित् पद से अचेतन प्रकृति काल नित्य विभूति तथा धर्मभूत ज्ञान इन चार द्रव्य का बोध होता है। जीव एवं ईश्वर ज्ञान गुण वाले हैं वह ज्ञान विभु अजड तथा अर्थ को प्रकाश करने वाला है।१९। ईश्वर गत ज्ञान कर्म के अधीन न होने से नित्यतया व्यवहृत होता है कर्माधीन जीवगत होने से विभिन्न कार्य कलापतया संकोच एवं विकाश शाली होकर अनित्यरूपेण व्यवहृत होता है तथा अन्तरंग भक्ति का साधन हैं। शुद्ध सत्व गुण तथा नित्य विभूति अज़ड स्वयं प्रकाश माना गया है।२०। शुद्ध सत्व एवं नित्य विभूति काल के अधीन नहीं होते हैं विभु हैं ईश्वर तथा नित्य मुक्तों के भोग्य

सत्वादि गुणभेदेनाहङ्कारस्त्रिविधस्ततः ।
इन्द्रियाणि दशैकं च सात्विकाहंकृतेरथ ॥२३॥
तामसाहङ्कृतेश्चाथ राजससहकारतः ।
जायते शब्दतन्मात्रं स्पर्शहेतुस्ततो नभः ॥२४॥
स्पर्शाद्वायुस्ततो रूपं रूपात्तेजस्ततो रसः ।
रसादापस्तथा चाद्भ्यो गन्धो जाताक्षितिस्ततः ॥२५॥
तन्मात्रं द्रव्यरूपं चाद्रव्यं शब्दादयो गुणाः ।
शब्दादयो गुणाभिन्नाः शब्दादिकतन्मात्रतः ॥२६॥

एवं भोग स्थान रूप हैं। सत्वादि गुणों से रहित विभु जड एवं श्रीरामजी का शरीर स्वरूप काल है ।२१। सत्व रज एवं तम रूप तीनों गुणों का आश्रय रूप काल से भिन्न नित्य एवं जड रूपा प्रकृति है। उसी प्रकृति का पहला विकार महान् महतत्त्व है वह सात्विक राजस तथा तामस भेजसे तीन प्रकार का होता है ।२२। उसी महतत्त्व से अहंकार उत्पन्न होहा है जो सत्व गुण रजो गुण और तमो गुणों के भेद से तीन प्रकार का होता है। राजस अहंकार सहकृत सात्विक अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय एवं उभयात्मक मन यों एकादश इन्द्रिय उत्पन्न होते हैं ।२३। राजस अहंकार के सहकार से तामस अहंकार से शब्द तन्मात्रा उत्पन्न होती है शब्द तन्मात्रा से आकाश उत्पन्न होता है आकाश से स्पर्श तन्मात्रा उत्पन्न होती है स्पर्श तन्मात्रा से वायु उत्पन्न होता है वायु से रूप तन्मत्रा उत्पन्न होती है उससे तेज उत्पन्न होता है तेज से रस तन्मात्रा उत्पन्न होती

पञ्चीकृत्य च भूतेभ्यो रामो जगत् करोति हि ।
स एव रक्षति तद् वत् प्रलयं विदधात्यपि ॥२७॥
पञ्चीकरणतः पूर्वा सृष्टिः समष्टिरुच्यते ।
उत्तरा व्यष्टिसृष्टिस्तु क्रियते ब्रह्मदेहिना ॥२८॥"
इति ॥२३॥

उक्तञ्च प्रकृतितत्त्वमधिकृत्याचार्यसार्वभौमैरानन्द-भाष्यकारैर्भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैर्वेदान्तसारे-

है उससे जल उत्पन्न होता है जल से गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न होती है उस से पृथिबी उत्पन्न होती है ।२४-२५। शब्द स्पर्श रूप रस एवं गन्ध के तन्मात्रा से शब्दादि गुण भिन्न हैं क्योंकि तन्मात्रा द्रव्य रूप हैं शब्दादि गुण अद्रव्य रूप हैं ॥२६। पृथिवी आदि पांचों भूमों का पंचीकरण कर के सर्व सर्जक सर्वेश्वर श्रीरामजी संसार की रचना करते हैं वेही रक्षा करते हैं एवं प्रलय भी वेही करते हैं ।२७। पंचीकरण से पहले की सृष्टि को समष्टि सृष्टि कहते हैं जिसे सत् संकल्प से सर्वेश्वर श्रीरामजी स्वयं करते हैं पंचीकरण के वाद की सृष्टि को व्यष्टि सृष्टि कहते हैं उसे ब्रह्म देहरूपी श्रीरामजी से किया जाता है ।२८। ॥२३॥

प्रकृति तत्त्व के निरूपण प्रसंग में आचार्य सार्वभौम आनन्दभाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने वेदान्तसार में इसी प्रकार कहा है-

"पृष्टानामेकमाद्यं त्रिकमपि श्रृणु तद्भेदतो नाम भेदैः
नित्याऽज्ञाऽचेतनासाप्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिः शुभैका ।

तत्वविषयक श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी के प्रश्नों के उत्तर देने के लिये आचार्य प्रवर भगवान् श्रीरामानंदाचार्य जी कहते हैं कि—हे सुरसुरानन्द ! तुमने जो तत्वादि विषयक दश प्रश्नों को पूछा है उनमें से जो तुम्हारा प्रथम प्रश्न है अर्थात् तत्त्व क्या है ? इत्याकारक प्रश्न है, उसका उत्तर सुनो—तत्त्व को जानने वाले श्रीव्यास—पराशर वोधायन आदि महर्षियों ने ऐसा कहा है अर्थात् तत्त्व तीन प्रकार के होते हैं। अचित्=प्रकृति, चित्—चेतन बद्धादिक जीव समुदाय तथा सर्व जगत् के कारण सर्व शेषी परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ये तीन प्रकार के तत्त्व शास्त्रों में श्रीपराशर व्यासादि के द्वारा प्रतिपादित हुये हैं । उन में जो प्रथम अचित् पदार्थ है वह नाम भेद से अर्थात् वाचक पद के भेद से नित्य उत्पाद विनाश रहित कहलाती है । अर्थात् परमेश्वर शेष होने से इसका आविर्भाव तिरोभाव नहीं होता, तथा इसको अज्ञा=ज्ञानभिन्न कहते हैं, अर्थात् ज्ञान का अधिकरण नहीं है जड है यह प्रकृति पदवाच्य सब का उत्पादक है, अविकृति है विकार दोष रहित है अर्थात उत्पन्ना नहीं होती है, विश्वयोनि है संपूर्ण जड जगत का कारण है नाना वर्ण वाली है अर्थात् शुक्लादि भेद से अनेक प्रकारक सरूप विरूप कार्यों का उत्पादक है । अजा है जन्मरूप विकार वर्जित है । त्रिगुणसुनिलया सत्वगुण रजस्तमोगुण का निदानस्थान

नानावर्णात्मकाजात्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया
निर्व्यापारापरार्थामहदहमितिसूरुच्यते तत्त्वविद्भिः" इति।२४।

इत्यनुभवानन्दद्वारपीठनामकश्रीरामानन्दाचार्यपीठसंस्थापकैर्जगद्
गुरुश्रीमदनुभवानन्दाचार्यैर्विरचिते श्रौतार्थसङ्ग्रहेऽचिदर्थ
निरूपणात्मको द्वितीयः परिच्छेदः ॥२॥

श्रीरामः शरणं मम

है एवं अव्यक्त है चक्षुरादि इन्द्रियों से ग्राह्य होने वाली नहीं है, निर्व्यापार है जड होने से स्वतः व्यापार रहित है, परार्थ है जीव के भोगापवर्गरूप कार्य का संपादन करने वाली है। एवं महत्तत्व अहंकारादि लक्षण कार्य का संपादन करने वाली है। इस प्रकार तत्त्व घटक प्रथम अचित् पदार्थ का निर्वचन प्राचीनाचार्यों ने किया है ॥२४॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीते श्रौतार्थ संग्रह
प्रकाशे
द्वितीय परिच्छेदः

श्रीरामः शरणं मम

श्रीरामाय नमः

卐 ३ 卐

अथेश्वरार्थनिरूपणम्

ईश्वरस्तु विभुचेतनः । विशेषणानुपादाने जीवे विशेष्यानुपादाने कालेऽति प्रसङ्गवारणायोभयोपादानम् । तत्र चेतनत्वं नाम ज्ञानाधिकरणत्वम् । विभुत्वं तु स्वरूपतो ज्ञानतः शरीरतश्च व्यापकत्त्वम् ॥१॥

स ईश्वरः "सत्वादयोन सन्तीशे यत्र तु प्राकृता गुणाः" (वि.पु. १।९।४४) इति वचनप्रामाण्याद्धेयप्राकृतगुणरहितः

अब विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन में प्रसिद्ध चित्–जीव तत्त्व अचित्–प्रकृतितत्त्व एवं ईश्वर तत्त्वों में से चित् तथा अचित् तत्त्वों को निरूपणकर तीसरे ईश्वर तत्त्व का निरूपण किया जाता है। विभु सर्व व्यापक होकर चेतन ज्ञान का आधार हो उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर के लक्षण में विभुत्व यह विशेषण ईश्वर में न दें तो जीव में अतिव्याप्त होगा क्योंकि जीव भी चेतन है पर विभु नहीं। चेतनत्व विशेषण का उल्लेख न करें तो काल में अतिव्याप्त होगा क्योंकि काल विभु है पर चेतन नहीं। अतः जीव एवं काल में अति व्याप्ति दोष वारण के लिये विभु तथा चेतन दोनों पदों का प्रयोग किया है। चेतन उसे कहते हैं जो ज्ञान का अधिकरण आधार हो। स्वरूप से ज्ञान से शरीर से भी जो व्यापक हो उसे विभु कहते हैं ॥१॥

पूर्व वर्णित लक्षण वाला ईश्वर जिस ईश ईश्वर में सत्व रज एवं तम प्रभृति प्राकृतिक गुण नहीं हैं, इत्यादि विष्णु पुराण के

"परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते। स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च" (श्वे० ६-८) इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यान्निरूपाधिकानन्त कल्याणगुणविशिष्टः "आनन्दं ब्रह्म" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै०२-१) इत्यादिश्रुतेः सच्चिदानन्दरूपः, देशकाल वस्तुपरिच्छेदशून्यात्मकानन्तत्त्वविशिष्टत्वादनन्तः, ब्रह्म-शब्दवाच्यः "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" वचन प्रामाण्य से हेय त्याग करने योग्य प्रकृति संबन्धी गुणों से रहित है। इस परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी की नाना प्रकार की शक्ति तथा स्वाभाविक परोपाधिक नहीं ज्ञान बल एवं क्रिया प्रभृति सूनी जाती है इत्यादि श्वेताश्वतर श्रुति के प्राभाण्य से निरुपाधिक किसी प्रकार के उपाधि से रहित अनन्त कल्याण गुणों से युक्त है। ब्रह्म आनन्द स्वरूप आनन्द गुण वाला है स्वरूप एवं गुण से भी विकार रहित सत्य स्वरूप ब्रह्म है नित्य असंकुचित ज्ञान वाला ब्रह्म है देश परिच्छेद काल परिच्छेद एवं वस्तु परिच्छेद से रहित ब्रह्म है इत्यादि तैत्तिरीय श्रुति के प्रामाण्य से सत् चित् एवं आनन्द रूप है। देश काल एवं वस्तु परिच्छेद से शून्य स्वरूप अनन्त से युक्त होने से अनन्त हैं एवं ब्रह्म शब्द से कथित है। सोम्य श्वेत केतु ! यह परिदृश्यमान विभक्त नाम एवं रूप वाला अनेक अवस्था वाला घट पट रूप आदि समस्त जगत् अग्रे सृष्टि काल से पहले एकम् एव अविभक्त नाम एवं रूप वाला होने से एकत्व अवस्था से ही युक्त होकर अद्वितीयम् कर्तृत्व तथा कारकान्तर से रहित सदेव सदाकारक प्रतीति का

(छा० ६।२।१) "यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि..." (तै०३-१) इत्यादिश्रुतेरस्य जगतोऽभिन्न निमित्तोपादनकारणरूपो भुक्ति मुक्ति प्रदश्चास्ति ॥२॥

ईश्वरस्य जगदुपादानत्वस्वीकारे निर्विकारत्व प्रतिपादक श्रुतिविरोधस्तु न शङ्कनीयस्तत्र सद्वारकोपादानताया एव स्वीकारात् ॥३॥

विषय रूप से ही अखिल ब्रह्माण्ड नामक श्रीराम रूप से था। यतः जिस कारण रूप श्रीरामजी से ये परिदृश्यमान चराचर लक्षण भूत प्रभृति ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त उत्पन्न होते हैं जिससे समुत्पन्न चराचर सभी प्राणि समूह जीते हैं एवं जिस में प्रलय काल में प्रविलीयमान होते हैं संसार का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण पर ब्रह्म श्रीराम है उसे जानो इत्यादि छान्दोग्य एवं तैत्तिरीय श्रुतियों के अनुसन्धान से इस संसार का अभिन्न निमित्त तथा उपादान कारण स्वरूप भुक्ति एवं मुक्ति को प्रदान करने वाले ईश्वर सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही हैं अन्य नहीं ॥२॥

ईश्वर को संसार का उपादान कारण स्वीकार करने से ब्रह्म को निर्विकार रूप से प्रतिपादन करने वाली श्रुति से विरोध होगा ऐसी शंका यहां नहीं करनी चाहिये क्योंकि ईश्वर में जो उपादानता मानी गई है वह सद्वारक यानी विशेषण अंश में ही अर्थात् ब्रह्म का विशेषणभूत प्रकृति अंश में ही संसार की उपादानता स्वीकृत है विशेष्य रूप ईश्वर में नहीं ॥३॥

उक्तं च जगद्गुरुभिः श्रीश्रुतानन्दाचार्यैः—

"विकारञ्च रामोदयाब्धिस्तथात्वे
दयाशून्यतां पक्षपातं च नैति ।
प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ
च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म" इति ।।४।।

"रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते" (श्रीरामतापनीयः)

इतिश्रुतिप्रामाण्याद् ब्रह्मपदाभिधेयः स चेश्वरः श्रीराम एव ।५।

श्रौतसिद्धान्त विन्दु के आठ वें श्लोक में जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी ने इस तथ्य का निरूपण किया है श्रीरामचन्द्रजी के प्रकार विशेषण रूप प्रकृति में विकृति होकर सृष्टि होती है एवं प्राणि वर्ग के पूर्वकर्मानुसार नाना प्रकार की सृष्टि की जाती है इसलिये दया के सागर श्रीरामजी में दया शून्यता तथा विकारिता सम्वन्धी दोषों का संश्लेष नहीं होता है इस श्लोक का विशेष विवरण मेरे सम्पूर्ण प्रवन्ध व्याख्यान में देखें ।।४।।

जिस सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप सर्वरमणशील परतत्त्व में योगिजन सदारमण करते हैं इस श्रीराम पद से सभी को रमाने या निरतिशय आनन्द प्रदान करने वाले पर ब्रह्म का बोध होता है, इस श्रीरामतापनीय श्रुति के प्रमाण से ब्रह्म पद से कथित ईश्वर है वह श्रीरामजी ही हैं अन्य नहीं ।।५।।

"ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्य तेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विनाहेयैर्गुणादिभिः"
(वि. पु. ६।५।७९)
"तत्र पूज्यपदार्थोक्तिपरिभाषासमन्वितः ।
शब्दोऽयं नोपचारेण त्वन्यत्र ह्युपचारतः'
(वि. पु. ६।५।७७)

इत्यादिवचनप्रामाण्याद्भगशब्दवाच्यज्ञानशक्तिबलैश्वर्य वीर्यतेजो रूपषड्विधैश्वर्यशालित्वात् स हि भगवच्छब्द वाच्यश्च ॥६॥

उक्तं च बोधायनवृत्तिकारस्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्यस्य शिष्यवर्यैः श्रीगङ्गाधराचार्यैः-

सर्वथा त्याग करने योग्य सत्व रज तथा तमोगुणों एवं उन से जाय मान क्लेश आदि को त्यागकर ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तथा तेज प्रभृति सद्गुण ही 'भगवत्' शब्द से कहे जाते हैं पूजनीय पदार्थों को बोध कराने के लिये सत् लक्षण से युक्त इस 'भगवान्' शब्द का प्रयोग परमात्मा में मुख्य रूप से अन्यत्र इस शब्द का प्रयोग गौणरूप से होता है मुख्य नहीं इत्यादि विष्णुपुराण वचनों के प्रामाण्य से 'भग' शब्द से वाच्य-मुख्य रूप से कथित ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य एवं तेज स्वरूप छ प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त हैं इस लिये वह ईश्वर श्रीरामजी हैं एवं भगवत् शब्द से वाच्य कथित सभी शास्त्रों में श्रीराम चन्द्रजी ही हैं ॥६॥

बोधायन वृत्तिकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी के सत् शिष्य श्रीगंगा धराचार्यजीने भी श्रीराम भगवत्त्व नामक प्रबन्ध में पूर्वोक्त रूप

"ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसि षड्गुणाः ।
भगत्वेनेरिताः सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् ॥
श्रीरामे भगवच्छब्दो मुख्यवृत्त्या प्रवर्त्तते ।
गौण एव स चान्यत्र षड्विधैश्वर्यलेशतः"
(श्रीरामभगवत्त्वम्) इति ॥७॥

"नित्योनित्यानाम्" (क० २।२।१३) इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् स चेश्वरो नित्यः "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं

से ही वर्णन किया है शास्त्रों में भग शब्द से वर्णित ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य एवं तेज ये छ गुण श्रीरामजी में हैं अतः श्रीरामचन्द्रजी भगवान् हैं । सर्वेश्वर श्रीरामजी में पूर्णतः छ प्रकार के ऐश्वर्य होने से भगवत् शब्द मुख्य वृत्ति से प्रयुक्त होता है अन्यों में भगवान् शब्द का प्रयोग षड्विध ऐश्वर्य के लेश मात्र के होने से भी हो रहा है अतः भगवत् शब्द के वाच्य श्रीराम जी हैं वेही ईश्वर शब्द से वेदान्त शास्त्रों में निरूपित हैं ।७।

सभी शास्त्रों में नित्य रूप से वर्णित जीवात्माओं से भिन्न तया स्थिति एवं प्रवृत्ति के रूप में नित्यतया अविनाशीरूप से प्रसिद्ध इत्यादि कठोपनिषद् वचन के प्रामाण्य से वह ईश्वर नित्य है । जब जीवात्मा सुवर्ण के समान वर्ण वाले कर्ता निमित्तकारण एवं योनि उपादान कारणभूत स्वरूप एवं गुण से भी सर्वतोभाव से बृहत स्वरूप वाले ईश सर्व नियन्ता परपुरुष उपाधि रहित पुरुष पद से कथित परमात्मा श्रीरामजी को देखता है इत्यादि

कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्" (मु० ३।१।३) इत्यादिश्रुतेर्दिव्यमङ्गलविग्रहश्चास्ति ॥८॥

अत एवोक्तं भगवद्भिरामानन्दभाष्यकारैः श्रीरामानन्दाचार्यै राचार्यसार्वभौमैः–"अत एव श्रुत्युपबृंहणीभूतेतिहास पुराणादिषु बहुशस्तत्र तत्र भगवतो दिव्यमङ्गलविग्रहस्योपवर्णनं सङ्गच्छते" (आनन्दभाष्यम् १।१।२१) इति ॥९॥

स च सर्वेश्वरो भगवान् श्रीरामः परव्यूहविभवान्तर्याम्यर्चावताररूपेण पञ्चधास्थितः । तथा चागमः–

"मम प्रकाराः पञ्चेति प्राहुर्वेदान्तपारगाः ।
परो व्यूहश्च विभवोनियन्ता सर्वदेहिनाम् ॥

श्रुति वचनों के अनुसन्धान से वह ईश्वर दिव्य मंगल विग्रह–दिव्य शरीर एवं मंगलमय शरीर वाला है ऐसा बोध होता है ॥८॥

भगवान् के दिव्य मंगलमय विग्रह के विषय में भगवान् आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्य जी आचार्य सार्वभौम जीने आनन्दभाष्य में कहा है–इसीलिये श्रुति के अर्थ का उपबृंहक–वर्धक इतिह स पुराण स्मृति आदि में उन उन स्थानों में विस्तार पूर्वक भगवान् के दिव्य मंगल विग्रह का वर्णन संगत होता है ॥९॥

वह पूर्वोक्त रूप से वर्णित सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामजी पर व्यूह विभव अन्तर्यामी एवं अर्चावतार के भेद से पांच प्रकार से अवस्थित हैं इस विषय को पांचरात्र आगम के बिष्वक्सेन नामक संहिता में लिखा है–वेदान्त तत्त्व के पारगामी साधक लोग मेरे

अर्चावतारश्च तथा दयालुः पुरुषाकृतिः ।
इत्येवं पञ्चधा प्राहुर्मां रहस्य विदोजनाः" इति ॥१०॥

(बिष्वक्सेनसंहिता) समुदीरितञ्चैतदीश्वरतत्त्वमधिकृत्य प्रमेयोद्देशभास्करेसिद्धान्तवाचस्पति जगद्गुरु श्रीचिदानन्दाचार्यैः:-

"रामश्च ब्रह्मकर्ता हि विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ।
परव्यूहादि रूपेण सीतानाथश्च पञ्चधा ॥७४॥

भगवान् के पांच प्रकार वतलाये हैं पर व्यूह विभव सभी का नियन्त्रक अन्तर्यामी एवं परमदयालु पुरुषाकृति वाले अर्चावतार इस प्रकार रहस्य को जानने वाले लोग भगवान् का स्वरूप को पांच प्रकार से बर्णन किये हैं ॥१०॥

इसी प्रकृत ईश्वर तत्त्व के विषय में सिद्धान्तवाचस्पति जगद्गुरु श्रीचिदानन्दाचार्यजीने प्रमेयोद्देशभास्कर में कहा है-"रक्षां बिधास्यन् भूतानां त्रिष्णुत्वमुपजग्मिवान्" (श्रीमद्रामायण ७।१० ४।९) इस महर्षि के वचनानुसार सर्वभूतों के रक्षा हेतु सर्वेश्वर श्रीरामजीने विष्णु स्वरूप को धारण किया वे ही श्रीरामचन्द्रजी "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" इस श्वेताश्वतर श्रुति के अनुसार सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी की सृष्टि किये उन्ही श्रीसीतानाथजीने अलग अलग कार्य सम्पादनार्थ पर व्यूह विभव अन्तर्यामी एवं अर्चावतार रूप से पांच प्रकार से अपने स्व रूप को विभक्त किया ।७४। इन पांच प्रकार के स्वरूपों में पर वह कहलाता है जो परात्पर नित्य लोक दिव्य धाम श्रीसाकेत में विराजमान है एवं

परश्च परलोके हि साकेते सोऽधिराजते ।
दिव्यदेहगुणोनित्योदिव्यशस्त्रास्त्रभूषणः ॥७५॥
अनन्तकरुणावत्या सीतया जगदम्बया ।
सिंहासने समासीनो दिव्ये दिव्यपुरे परे ॥७६॥
सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च भगवान् करुणाम्बुधिः ।
नित्युमुक्तैः स्तुतश्चाथ वेदवेद्यः परात्परः ॥७७॥

नित्य अविनाशी है दिव्य देह तथा दिव्यगुणों से युक्त है और दिव्य शस्त्र दिव्य अस्त्र एवं दिव्य आभूषणों से सदा अलंकृत रहते है। तथा परात्पर दिव्यपुर श्रीअयोध्या में अतिदिव्यसिंहासन में अनन्त करुणा वाली जगदम्वा अपने से अभिन्न स्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के साथ विराजमान है। और वे परात् पर ब्रह्म तत्त्व है वेद से वेद्य जाने जाने वाले है सर्वज्ञ है सर्व शक्ति सम्पन्न है उत्पत्ति प्रलय अगति गति विद्या एवं अविद्या रूप षडैश्वर्य शाली होने से भगवान् कहलाते है और करुणा के समुद्र है नित्य मुक्त श्रीहनुमान् आदि अनन्त साधकों से सदा संस्तुत है।७५-७६-७७। सृष्टि पालन एवं संहार प्रभृति कार्यों को सम्पादन करने के लिये वे ही श्रीरामजी व्यूह रूप को धारण करलेते है वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध के प्रभेद से चार प्रकार का व्यूह माना गया है।७८। इन में प्रथम व्यूह श्रीवासुदेवजी से केशव नारायण एवं माधव ये तीन व्यूह होते है। तथा श्रीसंकर्षणजी से गोविन्द मधुसूदन एवं बिष्णु ये तीन व्यूह होते है।७९। तथैव श्रीप्रद्युम्नजीं से ऋषिकेश पद्मनाम एवं

व्यूहतां याति श्रीरामः सृष्ट्याद्यर्थमुपासितुम् ।
चतुर्धा च मतो व्यूहो वासुदेवादिभेदतः ॥७८॥
वासुदेवात् त्रिधा व्यूहा भवन्ति केशवादयः ।
सङ्कर्षणाच्च गोविन्दादयस्त्रिधा भवन्ति हि ॥७९॥
प्रद्युम्नाच्च त्रिधा व्यूहा हृषिकेशादयो मताः ।
भवन्त्यथानिरुद्धाच्च त्रयः श्रीवामनादयः ॥८०॥
रामः सर्वावताराणामवतारी समीरितः ।
परित्राणं च साधूनामवतारप्रयोजनम् ॥८१॥

दामोदर ये तीन व्यूह होते है । और श्रीअनिरुद्धजी से वामन श्रीधर एवं त्रिविक्रमये तीन व्यूह होते है ।८०। सर्वेश्वर श्रीराम चन्द्रजी सभी अवतारों के अवतारी के स्वरूप में "सर्वेषामवताराणामवतारीरधूत्तमः" इस प्रकार से आगमशास्त्रों में अच्छी प्रकार से वर्णन किया गया है श्रीरामजी के अवतार का मुख्य प्रयोजन साधुओं का संरक्षण एवं अधर्मियों का मर्दन तथा वैदिक धर्म संरक्षण है ।८१। हे सर्व शरण्य श्रीराम ? मैं आप श्री के शरण में आया हूं मेरी रक्षा करें' इस प्रकार एक ही वार सर्वतोभाव से श्रीरामजी की प्रपत्ति स्वीकार करने वाले साधक को सर्वेश्वर श्रीरामजी सभी भूत प्राणि वर्ग से सदा के लिये अभय प्रदान करते हैं अपने शरण में आये साधक के अपराधों को शरणागत वत्सल श्रीराम स्मरण नहीं करते हैं प्रत्युत उस प्रपन्न के सभी अपराधों को क्षमा कर सदा के लिये निर्भय कर देतेहैं । ।८२। साक्षात् अवतार गौण अवतार एवं आवेश अवतार के भेद

सर्वेभ्यश्चाभयं दत्ते रामः सकृत् प्रपत्तितः ।
स्वाश्रितस्यापराधांश्च रामः स्मरति नैव हि ॥८२॥
साक्षाद् गौणास्तथाऽऽवेश इत्येवं विभवास्त्रभः ।
मुख्यमुख्यतरत्वादि भेदात् साक्षात् त्रिधा मतः ॥८३॥
नृसिंहवामनभेदाद्द्विधा मुख्यः प्रकीर्तितः ।
मुख्यतरश्च श्रीकृष्णो रामो मुख्यतमस्तथा ॥८४॥
मत्स्यकूर्मादिभेदैश्च मतो गौणास्त्वनेकधा ।
कलास्वरूपशक्तीनामावेशात् त्रिविधोऽन्तिमः ॥८५॥
विभवाश्च कलावेशात् पृथुधन्वन्तरादयः ।
शुद्धावेशस्तथाऽशुद्धावेशोद्विधा च मध्यमः ॥८६॥

से विभव अवतार तीन प्रकार के होते है। उन में से मुख्य मुख्यतर एवं मुख्यतम के भेद से साक्षात् अवतार तीन प्रकार का शास्त्र कारों ने माना है मुख्य अवतार श्रीनृसिंहावतार तथा श्रीवामनावतार के भेद से दो प्रकार का माना गया हैं, मुख्यतर श्रीकृष्णावतार है एवं मुख्यतम श्रीरामावतार है।८३-८४। मत्स्य कूर्म बाराह संकर्षण भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न रामानन्दाचार्य कल्कि आदि के भेद से गौण विभवावतार अनेक प्रकार का माना गया है। कला का आवेश स्वरूप का आवेश तथा शक्ति की आवेश के भेद से आवेशावतार तीन प्रकार का है।८५। पृथु तथा धन्वन्तरि विभव के कलावेश के अवतार हैं। शुद्ध आवेश तथा अशुद्ध आवेश के भेद से स्वरूपावेश दो प्रकार

शुद्धावेशाश्च विज्ञेयाः श्रीव्यासकपिलादयः ।
मता परशुरामादावशुद्धावेशिता बुधैः ॥८७॥
शक्त्यावेशो द्विधा शुद्धाशुद्धत्व भेदतो मतः ।
आदिमोऽपि द्विधा मुख्यगौणभेदात् प्रकीर्तितः ॥८८॥
हंसादयो मता मुख्या गौणा बुद्धादयो मताः ।
अन्तिमोऽपि द्विधा मुख्यगाणभेदादुदीरितः ॥८९॥
तत्र ब्रह्मादयो मुख्या गौणा मन्वादयो मताः ।
अन्तर्यामी द्विधा मूर्त्तामूर्त्तभेदात् प्रभाषितः ॥९०॥

का है ।८६। श्रीव्यासजी एवं श्रीकपिलजी शुद्धावेश अवतार हैं श्रीपरशुरामजी एवं श्रीहयग्रीव आदि अशुद्धावेश अवतार हैं ऐसा विद्वानों ने माना है ।८७। शुद्ध तथा अशुद्ध के भेद से शक्ति के आवेश अवतार को दो प्रकार का माना गया है मुख्य एवं गौण के भेद से शुद्धावतार दो प्रकार का माना गया है ।८८। हंस तथा दत्तात्रय आदि मुख्य माने गये हैं बुद्ध ऋषभदेव आदि गौण माने गये हैं शक्ति के अशुद्ध आवेश को भी मुख्य तथा गौण के भेद से दो प्रकार का माना गया है ।८९। उनमें से ब्रह्म शिव आदि मुख्य हैं ककुत्स्थ मुचुकुन्द अग्नि मनु कुवेर आदि गौण हैं । मूर्त्त एवं अमूर्त्त के भेद से अन्तर्यामी दो प्रकार का कहा गया है ।९० श्रीवैष्णवों द्वारा श्रीवैष्णवीय विधान से वेद वेदान्तादिविधान से संप्रतिष्ठित अर्चावतार स्वयं व्यक्त दैव सैद्ध एवं मानुष के भेद से चार प्रकार के होते है। इन में स्वयं व्यक्त

स्थापितो वैष्णवैर्मन्त्रैश्चतुर्थोऽर्चावतारकः ।
स्वयं व्यक्तश्च दैवश्च सैद्धश्च मानुषः खलु ॥९१॥"
इति ॥११॥

तत्र परोनाम नित्यधाम्नि श्रीसाकेते जगज्जनन्या श्रीसीताम्बया सह दिव्य सिंहासनोपरिविराजमानोदिव्यायुधालंकारविशिष्टविग्रहशाली नित्यं नित्यमुक्तपरिसेवमानः सर्वावतारी परिपूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीरामः ॥१२॥

जगत् स्रष्टुमुपासितुं च वासुदेव सङ्कर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धरूपेण चतुर्धाऽवस्थितो भगवान् श्रीरामोव्यूहः ।१३।

श्रीशालिग्राम श्रीरंगादि है दैव वेणीमाधवादि है सैद्ध श्रीकनक भवनविहारी श्रीबालाजी आदि है, मानुष का ग्रामार्चा गृहार्चा आदि से दो भेद है श्रीबोधायन मतादर्श आदि अन्य शास्त्रों में और भी अनेक भेद उपभेद प्रभेद का बर्णन उपलब्ध होता है जो वहीं द्रष्टव्य है ॥९१॥११॥

भगवान् के उन पांच प्रकार के स्वरूप में से पर नित्य धाम श्रीसाकेत में जगज्जननी श्रीसीतामाताजी के साथ दिव्य सिंहासन के ऊपर विराजमान हैं एवं दिव्य आयुध धनुष बाण एवं दिव्य अलंकारों से समलंकृत दिव्य शरीर वाले तथा नित्य ही नित्य मुक्त जीव श्रीहनुमान आदि से सर्वतोभाव से सेवित सभी अवतारों के मूल कारण रूप अवतारो परात्पर परिपूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीरामजी हैं ॥१२॥

संसार की सृष्टि एवं उपासना आदि कार्यों को सम्पादनार्थ वासुदेव सङ्कर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के रूप में चार प्रकार से विभक्त होकर स्थित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी व्यूह हैं ॥१३॥

तत्र वासुदेवे ज्ञान शक्त्यादि गुणषट्कं सङ्कर्षणे ज्ञानबल द्वयं प्रद्युम्ने वीर्यैश्वर्यद्वयमनिरुद्धे च तेजः शक्तिद्वयं वर्त्तते ॥१४॥

मत्स्यादितत्तत्सजातीयरूपेण स्वेच्छयाविर्भूतो भगवान् श्रीरामो विभवः ॥१५॥

योगदृष्टयानुभूयमानः सर्वत्र सर्वदा सर्वथा च जीवस्य परमसुहृद्रूपेणहृदयस्थितो भगवान् श्रीरामोऽन्तर्यामी १६

सर्वेश्वर श्रीरामजी के उन चार रूपों में से श्रीवासुदेवजी में ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य एवं तेज छ गुण हैं श्रीसङ्कर्षणजी में ज्ञान एवं बल दो गुण हैं श्रीप्रद्युम्नजी में वीर्य एवं ऐश्वर्य दो गुण हैं श्रीअनिरुद्धजी में तेज एवं शक्ति दो गुण हैं ।१४।

मत्स्य कूर्म आदि उन उन समान जातीय रूप से स्वेच्छा पूर्वक उन उन कार्य का सम्पादन करने के लिये समय समय पर आविर्भूत सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी विभव है ॥१५॥

साधकों द्वारा योग साधना रूप दृष्टि—अन्तराभिमुख ज्ञान रूप दृष्टि से अनुभव किये जाने वाले अनन्या भक्ति से साक्षात् किये जा सकने वाले सभी जगह सर्वदा निश्चित रूप से जीव के परममित्र के रूप में हृदय में स्थित भगवान् श्रीरामजी अन्तर्यामी है ॥१६॥

देशकालादिनियमविहीनस्तत्तत्स्थले भक्ताभिमतहिरण्यादिशरीरेऽप्राकृतशरीर विशिष्टरूपेण वर्तमानः स्नान भोजनादिष्वर्चकायत्ततां गतो मूर्त्तिविशेषरूपो भगवान् श्रीरामोऽर्चावतारः ॥१७॥

उक्तञ्चेश्वरतत्त्वमधिकृत्याचार्यसार्वभौमैरानन्दभाष्यकारैर्भगवद्भिरस्मद्परमगुरुभिः श्रीरामानन्दाचार्यैर्वेदान्तसारे–

देश तथा काल आदि नियमों से रहित उन उन जहाँ तहाँ स्थल विशेष में साधना करने वाले भक्तों से अभिमत रुचि या सामर्थ्य के अनुसार सुवर्ण चांदी पंचधातु या पाषाण प्रभृति के शरीर में अप्राकृतिक दिव्य रूप से स्थित स्नान भोजन शयन परिधान आदि सभी क्रिया कलापों में पुजारी या सेवक के अधीन में रहने वाले मूर्ति के आकृति में अवस्थित भगवान् श्रीरामजी अर्चावतार है ॥१७॥

आचार्य सार्वभौम आनन्दभाष्यकार हमारे दादागुरुजी भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने वेदान्तसार में ईश्वर तत्त्व के विषय में निम्नरूप से निरूपण किया है–

पूर्वोक्त षष्ठ तथा सप्तम श्लोकरूप दो श्लोकों से तत्त्वत्रय के अन्तर्गत चित् स्थूलसूक्ष्म साधारण चेतनवर्ग अर्थात् बद्धमुक्त तथा नित्य सूरिसाधारण जीववर्ग का तथा अचित् जडतत्त्व प्रकृति महदहंकारादिक स्थूल–सूक्ष्म का यथावत् प्रतिपादन करके श्रुति-स्मृति पुराण तथा इतिहास से प्रतिपाद्य सारभूत त्रिरूपात्मक अर्थात् चिदचिद्विशिष्ट तत्त्वशेखर सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ सर्वजगत् कारण

''विश्वं जातं यतोऽद्धायदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते
सर्वशेषी भगवान् श्रीसीतापति के स्वरूप तथा गुण के निर्वचन द्वारा निर्वचन करने के लिये चिदचिद्विशिष्ट परमेश्वर मुक्त प्राप्य तथा नित्य सूरियों से सर्वदा दर्शन के योग्य परतत्त्व का उपदेश करने के लिए उपक्रम करते है ''विश्वं जातं यतोऽद्धा' इत्यादि अष्टम तथा नवम श्लोक से।

स्थूल सूक्ष्म साधारण जंगदात्मक सकल जायमान विश्व सर्व शक्ति मान सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी महापुरुष श्रीराम से सर्ग के आदिकाल में उत्पन्न होता है। अर्थात् सर्गादि काल में जिससे आविर्भूत होता है। जिस तरह तिलों से तेल का आविर्भाव होता है। और उत्पन्न होने के वाद जिस परतत्व में अवस्थित रहता है। अर्थात् स्थिति मध्यकाल में जिससे पालित पोषित होता हुआ सर्वदा रक्षित रहता है।

एवं आविर्भूत तथा रक्षित जगत् संहारकाल में जिस परमतत्त्व में प्रलीयमान हो जाता है। एतादृश जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण जो हे वही परमतत्त्व भगवान् का लक्षण है और जिस परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर के दिनमणि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र तथा अग्निदेव, इस जगत को प्रकाशित करते हैं। तथा जिसके भय से भयभीत होकर के अत्यन्त वेगवान् वायुदेव दिनरात चलते ही रहते हैं। कभी अपने कार्य में आलस्य नहीं करते हैं। तथा जिससे विधारित रहने के कारण पृथिवी स्वकीय स्थान छोड करके रसातल में प्रविष्ट नहीं हो जाती है।

सूर्योयत्तेजसेन्दुःसकलमविरतं　भासयत्येतदेषः　।

और जो परमेश्वर सदा सर्वत्र पर्वत के समान अचल होकर के स्थिर है। अत एव समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् का साक्षी अर्थात् द्रष्टा हैं। और चित् अचित् तथा चिदचिद्विशिष्ट—इन तीनो तत्त्वों में प्रधान है तथा सर्वज्ञत्व शरणागत वत्सलता प्रभृति अनन्त कल्याण गुणों से सर्वदायुक्त रहते हैं। तथा जो जन्म-मरणादि विकारों से रहित होकर के सम्पूर्ण जगत् का भरणपोषण कर्त्ता हैं। और जनकजा रूपलक्ष्मी से सम्बद्ध है। तथा जगदुत्पादक तथा जगत् संहारक ब्रह्मा रुद्र प्रभृतिक देवों से आराधित रहते हैं। और शरण में आये हुए व्यक्तियों का भेदभाव के विना रक्षण करने में सदा तत्पर रहते हैं। और जिस करुणानिधान के चरणकमल का परम प्रेमारूप भक्ति वाले पुरुष विशेष ही प्राप्त करते हैं। अर्थात् भगवत्प्राप्ति का साधन केवल शुष्क ज्ञान नहीं है। न वा केवल कर्म है। किन्तु ज्ञानकर्म समुचित भक्ति योग सहकृत प्रपत्तिमात्र है। इससे इस बात को अभिव्यक्त किया गया। और भगवान् क्लेशकर्म विपाक और आशयों से अपरामृष्ट है। अत एव महानुभाव भगवान् के यश को श्रीवाल्मीकि प्रभृति महामुनियों के द्वारा लोक में उदीरित है।

और जो ज्ञानी श्रेष्ठ नित्यसूरि श्रीहनुमान् प्रभृतिक महाज्ञानियों के ध्यान का कर्म है। अर्थात् ध्यान का विषय होते हैं। योगियों से ध्येय है। तथा जो भगवान् अजन्मा जन्मरूप

यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः

भाव विकार से सर्वथा रहित हैं। (दशरथादिकों के कुलों में प्राकृत मनुष्य के समान आद्य क्षण सम्बन्ध जन्म नहीं हुआ है। किन्तु भक्तानुग्रह के लिए आविर्भाव हुआ है। अत एव भक्त प्रवर श्रीतुसीदासजी ने कहा है, 'रोदन तव ठाना'' इत्यादि। और जिसका जन्म होता है उसका मरण अवश्यं भावी है।

''मृत्यु र्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्यवाद्वशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः''

इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि जन्मशील का भरण अवश्यं भावी है तथा, ''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'' यह भी प्रमाण है कि जन्मवान् का मरण होता ही है। परन्तु महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने कहा है कि ''विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः' (अपने छोटे भाइयों तथा शरीर के साथ–साथ वैष्णव तेज में प्रवेश कर गये।) इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि परमेश्वर का मरण नहीं होता है। तब मरण व्याप्त जन्म भी भगवान् का नहीं होता है किन्तु स्वेच्छा से भगवान् का प्रादुर्भाव मात्र होता है। अर्थात् भगवान् का अभिव्यक्त होना ही जन्म कहलाता है।

अत एव मरण रहित होने से जन्मरहित भी हैं। एतावता भगवान् में जन्म मरण एतदुभय राहित्य सूचित किया गया। अर्थात् न तो भगवान् प्राकृत पुरुष की तरह अदृष्टादि रूप कारणों

साक्षीकूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययोविश्वभर्त्ता ॥८॥

से उत्पन्न होते हैं। न वा प्रकृत पदार्थों की तरह आयु समाप्त होने पर अथबा प्रलयकाल में विनष्ट होते हैं। क्योंकि भगवान् कर्माधीन नहीं है अत: उनका शरीर भी कर्माधीन नहीं है। न वा प्राकृत हैं। किन्तु अप्राकृतिक लोकोत्तर निर्मल ज्ञानानन्द स्वभावक है। भगवान् का वह तादृश शरीर देशकाल तथा वस्तु परिच्छेद होने से उत्पाद विनाशशील नहीं है। अपितु नित्य है। इसलिए भगवान् का जन्म तथा मरण नहीं होता हैं। वह सर्वदा अविनाशी अजन्मा है।

तथा जिस परमेश्वर श्रीसीतानाथ के माहात्म्य महत्त्व का समस्त वेदराशि अर्थात् अंगोपांग पुराणादि सहित वेद समुदाय अनुक्षणगान करते आये हैं। तथा अभी भी गान करते हैं और यावत् काल की सत्ता है तब तक भविष्य काल में भी गान करते रहेंगे। तथा जिस परमेश्वर जगत् कारण के अनन्त समाभ्यधिक विवर्जित ज्ञानादिक स्वाभाविक शक्ति तथा ज्ञानबलवीर्य स्वाभाविक है।

तथा जो भगवान् जरा वृद्धावस्था तथा पाप कर्म कुत्सित शास्त्र प्रतिषिद्ध कर्मों से रहित हैं। सर्वथा विवर्जित हैं। ब्रह्मादिक देव देवों के भी मन तथा वाणी का अविषय हैक्योंकि "यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह" इत्यादि श्रुति समुदाय कहती हैं कि परमेश्वर मन वाणी के व्यापार का विषय नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि परमेश्वर वाङ्‌ मनसातीत है। ऐसा जो

पुरुष विशेष है जो कि सकल वसुधाधिप होने पर भी अयोध्या धिपति हैं वही भगवान् श्रीसीतारामजी सकल जगत् का कारण सर्व नियामक सर्वशेषी परमेश्वर हैं । इस प्रकार से भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी को परमतत्त्व ज्ञेय ध्येय तथा प्राप्य के स्वरूप का निर्वचन करके समझांया । ऐसा इन दोनों श्लोकों का अन्वयार्थ हुआ । इसके पूर्व में तत्त्वत्रयान्तर्गत चित् अथा अचेतन जीव प्रकृति रूप दो तत्त्वों का निरूपण किया गया है। इसके वाद जड चेतन का धारक सर्व नियामक सर्वशेषी सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्वादिक सकल कल्याण गुणों का आकर समाम्य धिक विवर्जित सकल शास्त्र विहित कर्म के द्वारा आराध्य सकल कर्मफल प्रदाता योगिगम्य तथा ज्ञेय मुक्त प्राप्य समस्त वेदान्त गम्य पुरुषोत्तम मर्यादा के सागर तत्त्वत्रयों में तत्त्वशेखर ईश्वरतत्त्व सर्वेश्वर श्रीसीतापति रूप परमेश्वर का निरूपण करने के लिए उपक्रम करते हैं "विश्वं जातं यतोऽद्धा" इत्यादि श्लोक द्वयसे ।

जिस सर्वशक्ति सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी सर्वशेषी सर्वेश्वर श्रीसीता रामजी से यह परिदृश्यमान स्थूल जड चेतन जगत् प्रलयावसान काल में अर्थात् सर्गकाल में उत्पन्न होता है । तथा स्थिति काल में भगवान् से पालित होता है तथा अवसान में अर्थात् प्रलय काल में जिस परमात्मा में लीन हो जाता है वही परमेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं । इस श्लोक के प्रथम चरण से आचार्य श्री ने ईश्वर में जगत्कारणता का प्रदर्शन कराया है । कारण दो प्रकार का होता है निमित्तकारण तथा उपादानकारण—उसमें से

चैतन्य मू क निमित्तकारण अर्थात् कर्तृत्व ईश्वर में बतलाया तथा सर्व शरीक भगवान् में उत्पत्ति स्थिति प्रलय भगवान् से होता है यह कह करके उपादान कारणत्व का सूचन किया है। क्योकि घटादि कार्यों का उत्पाद स्थिति और विनाश ये तीनों उपादान कारण मृत्तिका में ही होता है। केवल पदार्थों का उत्पादन तो कर्त्ता कारण तथा सहकारी कारण से भी होता है। जैसे घटादि का उत्पादन कुलाल तथा दण्डादि सहकारी से भी होता है। परन्तु उत्पाद स्थिति विनाश तो उपादानमें ही होता है। ऐसा ही लोक में देखा जाता है। न तु मृत्तिका से घट का उत्पाद हो, कारण से मृदतिरिक्त में घट का अवस्थान हो तथा मृदतिरिक्त जलादिक में प्रलीयमान होता हो। किन्तु मृत्तिका ही में उत्पादादिक सब होता है। इसलिए उत्पादस्थित्यादिक मृत्तिका ही में होने से मृत्तिका घट का उपादान सिद्ध होता है। इसी तरह जगत् का उत्पाद स्थिति विनाश जिस से होता है वही परमेश्वर है ऐसा कहकर जगदाचार्यजीने वतलाया कि भगवान् से जगत् का उत्पाद स्थिति विनाश है।

इस विषय का समर्थन श्रुति भी करती है, "सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" "आत्मा वा इदमेकमग्रे आसीन्नान्यत् किञ्चनमिषत्" (यह परिदृश्यमान जगत् उत्पत्ति के पूर्व एक अद्वितीय सजातीय विजातीय रहित ब्रह्म रूप ही था। उत्पत्ति के पूर्व में समाभ्यधिक विवर्जित आत्मा मात्र था। तदतिरिक्त अर्थात् भगवत् स्वरूप व्यतिरिक्त क्रियाशील कोई भी

पदार्थ नहीं था ।) इत्यादि श्रुतियों से सर्गपूर्व में सत् आत्मादि पदों के द्वारा सदाद्यात्मक ईश्वर सत्ता का प्रतिपादन करके पुनः श्रुति कहती है, "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येनम जातानि जीवन्ति यत्प्रयत्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म" (जिस सर्वशक्ति समन्वित सदात्मक सर्वशेषी परमेश्वर रूप कारण से प्रलयावस्था में प्रसुप्त के समान यह परिदृश्यमान जगत् जायमान होता है। अर्थात् रात्रि में नीड निविष्ट पक्षीगण जिस तरह रात्रि के व्यतीत हो जाने पर प्रभात समय में नीडों से अभिव्यक्त होते हैं। यथा वा तिलों से जिस तरह तेल कारक व्यापार से अभिव्यक्त होता है। उसी तरह यह जगत् जिससे सर्गावस्था में क्रमिक अभिव्यक्त होता है तथा अभिव्यक्त होकर के स्थिति अवस्था में जिससे पालित पोषित होता है, एवं संहारावस्था में जिसमें विनष्ट हो जाता है अर्थात् तिरोहित हो जाता है, यह जगत् वही ब्रह्म स्वरूप हैं । तादृश जगत् कारणीभूत ईश्वर की जिज्ञासा करो । इन उपर्युक्त श्रुतियों से सिद्ध होता है । इस विषय का स्मृत्यादिक ग्रन्थों से भी स्पष्टीकरण होता है । तथाहि—

"यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादि युगागमे ।
यस्मिंश्चप्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥"

"यतः सर्वाणि भूतानि प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्रागमे प्रलीयन्ते यत्रैवाव्यक्त संज्ञके" इति ।

अर्थात आदि युग सर्ग के आदि काल में जिस सर्वशक्ति समन्वित परमात्मा से ये सब भूत अर्थात् जड चेतन साधारण सकल स्थूल पदार्थ आविर्भूत होते है। इन सब पदार्थों का आविर्भाव होता है । तथा पुनः कल्प के विरामकाल में जिस परमात्मतत्व में प्रलय तिरोभाव को प्राप्त कर जाते हैं वह ईश्वर है। दिन के प्रारम्भ काल में सभी भूत जिस परमेश्वर से अभिव्यक्त होते हैं रात्र्यागय– कल्पक्षय काल में जिसमें तिरोभूत हो जाते है वह परमेश्वर है। इन स्मृतियों से सिद्ध होता है कि भूतों का उत्पाद विनाश तथा पालन परमात्मा से ही होता है। इस बात को प्रथम चरण से बतलाया हैं।

"सूर्योयत्तजसेन्दुः सकलमविरत भासयत्येतदेष:"

सूर्य तथा चन्द्रमा ग्रहनक्षत्रादिक तैजस पदार्थ जिस भगवान के प्रकाश से प्रकाशित होकर के इस जगत् को प्रकाशित करते हैं अर्थात् सूर्यादिक देव भगवान् के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होकर के तब अपने अपने प्रकाशों से सूर्यादिक देव चराचर सकल जगत् को प्रकाशित करते हैं । न तु सूर्यादिको में पर प्रकाशकत्व सामर्थ्य स्वाभाविक है किन्तु परोपाधिक हैं । वह ईश्वर है ।

परमेश्वर से प्रकाशित होकर के सूर्यादिक जगत् को प्रकाशित करते हैं इस विषय का पुष्टीकरण श्रुती करती है, "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतोभांति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभातिसर्वं तस्य भासा जगदिदं विभाति।" इति।

अर्थात् तत्र उस परमात्मा में सूर्य प्रकाशित नहीं होते हैं। अर्थात् सूर्य के प्रकाश से परमात्मा प्रकाशित नहीं होते हैं। तथा चन्द्रमा और तारागण भी अपने प्रकाश से परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। तथा विद्युत के प्रकाश से भी परमात्मा का प्रकाश नहीं होता है। ये जो भौम काष्ठादिगत अग्नि है इसकी तो गणना ही क्या है। किन्तु उस परमात्मा के प्रकाशित होने पर ही सभी पदार्थ सूर्यादिक अनुभासित होते हैं। परमात्मा के प्रकाश से ही सारो दुनिया प्रकाशित होती है। अर्थात् प्रकाश रूप धर्म परमात्मा में ही है। तदितर सूर्यादिक में जो देखने में आता है वह परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त हुआ है। इसलिए सूर्यादिक के प्रकाश से परमात्मा प्रकाशित नहीं होते हैं। किन्तु परमात्मा के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं। इसलिए आचार्य श्री ने कहा कि "सूर्योयत्त्तेजसेन्दुः" इत्यादि।

इसी प्रकार स्मृति भी कहती है कि परमात्मा के प्रकाश का आश्रय लेकर ही सूर्यादिक प्रकाशक कहलाते हैं। तथाहि—

"यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौतत्तेजो विद्धिमामकम्॥" इति।

आदित्य सूर्य में रहने वाला जो प्रकाश सकल जगत् को प्रकाशित करती है। तथा चन्द्रमा में, विद्युत में और अग्नि में रहने वाला जो प्रकाश समस्त जगत् स्थित पदार्थ को प्रकाशित करता है हे अर्जुन! वह विलक्षण प्रकाश मेरा ही है अर्थात् वह प्रकाश परमात्मा का प्रकाश है। पर आदित्य चन्द्रमा प्रभृति का नहीं

है। एतादृश गुणगण विशिष्ट जो है वह परमात्मा है। यही ब्रह्म का लक्षण है।

इतना ही नहीं कि सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी जगत् का कारण हैं तथा सर्व प्रकाशक है किन्तु स्व स्व अधिकारों में परमात्मा से नियुक्त जो वायु इन्द्रादिक पुरुष हैं वे सब जिसके भय से भयभीत होकर के अपने अपने अधिकार कार्य में सर्वदा संलग्न रहते हैं इस बातको आचार्य जी कहते हैं "यद्भीत्यावाति वातः" इत्यादि। जिस परमात्मा के भय से स्वकीय अधिकार में नियुक्त वायुदेव जो कि जगत् के आयुरूप हैं ऐसा कहा है। इसरीति से सम्पूर्ण जगत् के प्राण रूप परमपुरुष वायु देव देवमनुष्यतिर्यक् प्रभृतिक प्राण समूह में श्वासोच्छ्वास रूप से संचरित होते रहते हैं। यह वायु दो प्रकार का होता हैं—वाह्य तथा आभ्यन्तर। इसमें शरीराभ्यन्तर संचरणशील वायु को प्राण कहते हैं। तथा वाहर में संचरणशील वायु को प्रकंपन महाबात प्रभृतिक नाम से कथित होता है। इस प्रकार के ये वायु जिसके भय से अतन्द्रित होकर के अपना कार्य करते हैं। श्रुति भी कहती है—

"भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः,
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः"

अर्थात् सकल जगत् का जो नियामक हैं परमेश्वर ब्रह्मारव्य श्रीराम उनके भय से अग्निदेव स्वकीय तपन क्रिया में संलग्न रहते हैं। तथा उस परमेश्वर के भय से भयभीत होकर के सूर्य तपन प्रकाशन कार्य को करते हैं। तथा उस परमेश्वर के भय

से ही इन्द्रवर्षणाधिपति वर्षण कार्य को तथा बायु स्वकीय कार्य में संलग्न रहते हैं। और क्या! यह जो मृत्यु यमराज है जो कि प्रजामात्र का संहारकारक है वह भी जिसके भय से भयभीत हो कर के स्वकीय अधिकार प्राप्त संहार कार्य में सर्वदैव संलग्न रहता है उस कार्य में थोडा भी आलस्य नहीं करता हैं। इस श्रुति प्रतिपादित अर्थ को बतलाते हुए कहा—"यद्भीत्यावातिवात:" इति।

"अवनिरपि सुतलं यातिनैवेति" जिस परमात्मा के भय से डरकर के पृथिवी सर्व जड चेतन का आधार रूपास्थिरा पृथिवी सुतल=रसातल में प्रवेश नहीं करती है। अथवा जिस परमेश्वर से अधिष्ठित=धारित होने के कारण पृथिवी स्वस्थान से विचलित होकर के रसातल में प्रवेश नहीं करती है।

"एतस्याक्षरस्य प्रशासने द्यावा पृथिवी विधृते तिष्ठत:"

अर्थात् इस अक्षर महापुरुष के प्रशासन में व्यवस्थित द्यु पृथिव्यादिक यथा स्थान में आधारित रहते हैं। स्वस्थान से कभी भी विंचलित नहीं होते हैं। इससे ईश्वर में सर्वधारकत्व का कथन किया गया है।

एतादृश गुणविशिष्ट परमेश्वर पुन किस प्रकार के हैं! इस प्रश्न के उत्तर में कहते है "ज्ञ:" एतादृश परमेश्वर पुन: 'ज्ञ' रूप है। अर्थात् त्रिकाल स्थित सभी जड चेतन पदार्थ को जाननेवाला जो ज्ञान स्व प्रकाश है तादृश ज्ञान स्वरूप तथा तादृश ज्ञान को अधिकरण हैं। इसलिए ज्ञाता सर्वज्ञ सर्ववित् है।

श्रुति कहती है "यः सर्वज्ञ स सर्वविंत्" जो पुरुष निशेष सर्व जड चेतन पदार्थ को द्रव्यत्वादि सामान्य रूप से जानता है तथा जो सकल पदार्थ के विशेष रूप से तत्तद्व्यक्तित्व रूप से जानता है। देशकाल तत्तद्गुण तत्तत्स्वरूप से जानता है तथा जगद्व्यापार में सर्वथा शक्तिमान् हैं वही परमेश्वर श्रीराम हैं।

पुनः जो सर्वसाक्षी है। अर्थात् भवपरंपरा से संपादित जो अग्नि होत्रादिक वेद विहित कर्म तादश कर्म फल भोक्ता जो जीव समुदाय उन जीवों का जो शुभाशुभ कर्म है तादश कर्म का, इस शुभाशुभ कर्म को पूर्वप्रमाणान्तरागम्यकहते हैं। तथा वह कर्म अतीन्द्रिय है। इस लिए एतादश कर्म को कोई प्रमाणान्तर से नहीं जाना जाता है। किन्तु ईश्वर मात्र उसको देखते है। इसलिए ईश्वर सर्व कर्म फल का द्रष्टा—साक्षी कहलाते है। श्रुति भी इस विषय को लेकर के कहती है

"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" इति।

अर्थात् सर्व जगत् का कारण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर साक्षी है। अर्थात् स्वकीय कर्म फल के भोक्ताजीवराशि का जो फल-जनक कर्म शुभाशुभरूप अतीन्द्रिय प्रमाणान्तरागम्य है तादश जीव कर्म को सदा देखने वाले है।

तथा परमेश्वर चेता ज्ञान रूप है। तथा केवल=मलरहित ज्ञानानन्द रूप है। क्योंकि "ज्ञानानन्दमयोऽमलः" इत्यादि वचन

के बल से मल रहित ज्ञानानन्दात्मकत्व सिद्ध होता है तथा परमेश्वर केवल है। अर्थात् प्राकृतिक सर्व विकार रहित होने से केवल कहलाते है। और, "निर्गुणश्च" निर्गुण हैं अर्थात् "नेति नेति" "अस्थूलमनणु" इत्यादि श्रुति सिद्ध प्राकृतिक विकारी सकल गुण से रहित होने से निर्गुण कहलाते हैं। नतु असंख्येय श्रुति प्रतिपादित अनन्त कल्याण गुण रहित हैं। अन्यथा गुणवत्व प्रतिपादक श्रुति विरोध होगा। इस श्रुति घटक "निर्गुण" विशेष का यथार्थ रूप से अर्थ न समझ करके अनेक पंडितंमम्यवादि ईश्वर को निराकार मान करके साकारवाद का निराकरण प्रयत्न से पथभ्रष्ट हो गये भक्ति प्रपत्ति रहित हो जाने से। प्रकृत शब्द की व्याख्या आचार्य चरण ने ऐसा ही किया है—

'निर्गता निकृष्टाः सत्वादयः प्राकृतागुणा यस्मात्तन्निर्गुणमिति व्युत्पत्तेर्निकृष्ट गुणराहित्य मेव निर्गुणत्वम्' (आनन्दभाष्य १.१'२)

तथा "कूटस्थः" इति। वह जगत्कारण परमेश्वर कूटस्थ है। कूट नाम है पत्थर के खण्ड का अथवा अयोघन का। उसकी तरह सर्वदा एक रूप से अवस्थित रहता हो। जिस तरह प्रस्तर खण्ड पर पानी पडे, कि सूर्यनारायण का प्रखर किरण पडे तथापि उस प्रस्तर खण्ड में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है। उसी तरह परमेश्वर सर्वदा सुखदुःखादि रूप विकार से रहित होने के कारण कूटस्थ कहलाते हैं। [सुखदुःखाद्युपाधिसंभेद रहित इति।] तथा "एकः" परमेश्वर एक है। नतु जड तथा

श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहुविधविबुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मोऽ

जीव के समान अनेक अनन्त है। क्योंकि ईश्वर में अनेकता न लोक सिद्ध है न वा शास्त्र सिद्ध है। अथवा एक है अद्वितीय है, सजातीय द्वितीय रहित है अथवा द्वितीय शब्द का अर्थ होता है सहायक "असिद्वितीयोनुससार पाण्लवम्" यहाँ द्वितीय शब्द सहायक वाची है। तो ईश्वर अद्वितीय सर्वसहायक रहित है। स्वयमेव सर्व सहाय रूप है। समाभ्यधिक विवर्जित है।

"वहु शुभगुणवानिति" तथा सर्वेश्वर वह श्रीराम अनेक शरणागतवत्सलत्वादिक रूप जो कल्याण शुभगुण है तादृशानन्त कल्यण गुणवान् हैं। अनन्त कल्याणगुणवान् कथन से हेय सकल गुण रहितत्व अभिव्यञ्जित होता है। तथा वह अव्यय है। सर्व प्रकारक विनाश रहित है। नतो गुण द्वारा इनका विनाश होता है नवा घटादिवत् स्वरूप से विनाश होता है। "अजोपिसन्न व्ययात्मा भूतानामीश्वरोंपिसन्" इत्यादि स्मृतियों में अव्ययत्व= अविनाशित्व का प्रतिपादन किया गया हैं। "विश्व भर्ता" इति। यह परमात्मा समस्त चराचर जगत् का भर्ता स्वामी है। भरण पोषण करने वाले है अर्थात् उत्पन्न इस जगत् का स्थितिकाल में रक्षक पालक हैं। भक्त के ऊपर आने वाली आपद से रक्षण करते हुए पालक है ॥८॥

"श्रीमानर्च्यः" इत्यादि। वह परमेश्वर श्रीमान् है अर्थात् लीलाविभूति, भोगविभूति तथा नित्यविभूति रूप जो श्री, तादृश श्री से नित्य युक्त हैं। श्रीमान् में नित्य योगार्थक मतुप् प्रत्यय है

अर्थात् इन विभूतित्रय से भगवान् सर्वदा युक्त रहते हैं । नतु लौकिक श्रीमान् की तरह अव्याप्यवृत्ति श्रीमान् हैं अर्थात् कभी श्रीयुक्त रहते है कभी नहीं किन्तु सर्वदा श्रीसमेत ही रहते हैं । अथवा विदेह जा रूप श्री से सर्वदा संयुक्त हैं ।

"अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा" इत्यादि वचन प्रामाण्य से श्रीसीतालक्षण श्री से सर्वदा युक्त हैं । अथवा शोभारूप श्री से युक्त है । अथवा धनधान्यादिक श्री से सर्वदा सम्मिलित है । "भगवान् रामचन्द्रोऽर्च्यः पूजनीयः" वे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अर्च्य हैं । अर्चन पूजन करने के योग्य हैं । अर्थात् सर्वशेषी पर ब्रह्म के शरीररूप जो ब्रह्माविष्णुरुद्र प्रभृतिक प्रभाव शाली देव हैं । उन से भी पूजनीय हैं । 'तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्' (भागवत) इस महर्षि वचन से जब सर्वशरीरी भगवान् श्रीरामजी ब्रह्मादिक का भी पूज्य हैं तब तो साधारण देवों तथा मनुष्य प्रभृतिक सर्व प्राणियों से पूज्य हैं यह बात कैमुतिक न्याय से सिद्ध होता है । तथा भगवान् श्री रामाजी शरण्य हैं । अथवा शरण में आये हुए व्यक्ति को सांसारिक तापों से विमुक्त कर के सर्वदा भय वर्जित परम पदको प्रदान करते हैं । ऐसा महर्षि वचन है

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।।"

ऐसा स्वयं कोशलेन्द्र सरकार का फरमान है। इससे यह सिद्ध होता है कि कोशलेन्द्र सरकार के समान अथवा उससे बडा कोई शरणागत वत्सल नहीं है। क्योंकि यह तो अनेक भयोपार्जित दुस्तर संसागर से भी पार लगाकर परम पद को प्राप्त कराने वाले हैं। तथा "योगिगम्यांघ्रिपद्मः" इति। योगी जो सनक सनन्तन सनत्कुमार प्रभृतिक योगशील महर्षि लोग हैं उन लोगों से गम्य प्राप्य है चरण कमल जिनका तादृश भगवान् श्रीरामजी हैं। अर्थात् भगवान् का चरण कमल अकृत पुण्य कर्मा, अत एव असंस्कृत अन्तः करण वाले व्यक्तियों से प्राप्त नहीं होता है। किन्तु पूर्वकथित महापुरुषों से ही प्राप्त होता है। जिस तरह वैदिक कर्मों में द्विजाति मात्र को अधिकार है ऐसा नियम है। ऐसा नियम यहाँ नहीं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

"येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रीयो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परांगतिम् ॥
किं पुन ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमामिति ॥"

अनेक नीच योनिक तथा स्त्री प्रभृतिक भक्तों का उद्धार कोशलेन्द्र सरकार ने किया हैं। ऐसी पौराणिक वर्ता भी लोक में प्रचलित है।

कविकुल कोकिल गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का यह गान तो उनके विश्व गुरुत्व सडिंडिमनाद फरमा रहा है–

स्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः ।
पाई न केहि गति, पतीत पावन राम भजि सुनु सठ मना ।
गनिका, अजामिल, व्याध, गीध, गजादि खल तारे घना ।
आभीर, जवन, किरात, खस, स्वपचादि अति अघरूपजे ।
कहि नाम वारक तेऽपि पावन होंहि राम ! नमामि ते ।। (मानस)

पुनः भगवान् "अस्पृश्यः क्लेशादिभिरिति ।

क्लेश कर्म विपाक आशयादि कों से अस्पृश्ष्ट है ! पतंजली ने कहा है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः ।

इसमें अविद्याऽस्मितारागद्वेष और अभिनिवेश ये योगशास्त्रोक्त पाँच नाम है क्लेश । अतद्वत् में जो तत्प्रकारक ज्ञान उसको अविद्या मिथ्यात्व कहते हैं । जैसे शरीर में आत्म ज्ञान आत्मा में शरीरत्व प्रकारक ज्ञान वगैरह को अविद्या कहते हैं । अस्मिता= इसका विशेष लक्षण योगसूत्र विवरण में देखिये । राग अनुराग द्वेष परद्रोह भावना अभिनिवेश मरणत्रास जो कि ब्रह्मा से लेकर कीट पतंग पर्यन्त मरणत्रास समान रूप से होता है । यह अविद्या ही अस्मिता रागद्वेष और अभिनिवेश इन चारों का कारण है । कर्म शब्द का अर्थ होता है शुभाशुभ पुण्यपाप । इनका जो फल है उसको विपाक कहते हैं । जिसको योगशास्त्र में कहा है— जाति, आयु और भोग सुखादि रूप का अनुभव । तथा आशय संस्कार वासना । इन सबों से असम्बद्ध पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं । ऐसा पुरुष विशेष को ईश्वर समझना—ऐसा योगमत है। इसका विशेष विवरण योगसूत्रभाष्य से जानिए । विस्तार के भय से यहाँ संक्षेप में बतलाया गया है ।

शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः　सुमहितमहिमासाधुवेदैरशेषै

"सत्समुदित सुयशाः" इति । सज्जन विद्वान् श्रीमद्वाल्मीकि व्यासादि प्रवर मनिषियों से समुदित हैं अर्थात् समीचीन रूप से लोक में वर्णित है सुयश सुयश सुश्लोक न तु निन्दा श्लोक जिनका एतादृश भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं । श्रीवाल्मीकि मुनि ने श्रीमद्रामायण ग्रन्थ में विस्तार रूप से सबको अपने अधीन करने वाले रावण वाली प्रभृति का तथा अति दुस्तर समुद्रबन्धन वगैरह अनेक यशस्कर कार्य का वर्णन किया है । इस लिए वर्णनीय नायक में उदात्तत्व तथा लोकोत्तरत्व की अभिव्यक्ति होती है । तथा "सूरिमान्यः" इति । वह भगवान् सूरि अर्थात् नित्य मुक्त जो श्रीहनुमान् प्रभृतिक सूरि है उन सबों से मान्य पूजनीय हैं । "सदापश्यन्ति सूरय" इस वचन से सिद्ध होता है कि नित्य सूरिगण सर्वदा ईश्वर का पूजन करते है । तथा वदान्य चतुर्वर्ग धर्मार्थ काममोक्ष फल को देने वाले है । एतादृश ईश्वर गुणसम्पन्न भगवान् श्रीरामचन्द्रजी है । "सुमहित महिमा साधुवैदेर शेषैरिति" साधु समीचीम रूप से यथा शाश्वत सर्वदा अशेषनिखिल सभी वेदो से प्रतिपादित है महिमा महत्त्व जिनका । तथा "निर्मृत्युः जो श्रीरामजी मृत्युसे सर्वदा रहित हैं तदुक्तम् "विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः" शरीर तथा सोदरों के साथ

निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरोगीर्मनोभ्यामगम्यः" ॥९।

इति ॥१८॥

इत्यनुभवानन्दद्वारपीठनामकश्रीरामानन्दाचार्यपीठसंस्थापकैर्जगद्गुरु

श्रीमदनुभवानन्दाचार्यैंविरचिते श्रौतार्थसंग्रह ईश्वरार्थ

निरूपणात्मकस्तृतीयः परिच्छेदः ॥३॥

ψ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ψ

卐 श्रीसीतारामार्पणमस्तु 卐

श्रीरामः शरणं मम

वैष्णव तेज स्वदिव्य धाम श्रीसाकेत में प्रविष्ट हो गए इस वचन से सिद्ध होता है कि भगवान् मृत्यु रहित है। और भगवान् सर्व शक्तिमान है। "परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते" इस श्रुति से सिद्ध होता है कि समाम्यधिक विगत अत्युत्कृष्ट शक्ति ईश्वर में है। तथा जिस ईश्वर में जरा वृद्धावस्था नहीं है किसी प्रकार का रजो गुण प्रयुक्त मल नहीं है "अपहतपाप्मा विजरो विमृत्यु" ईश्वर सकल पाप कर्म से रहति है। जरावस्था से रहित है तथा सकल मलीन कर्म पाप से रहित हैं।

तथा "त्रिचिभवप्रमुखैर्गीर्मनोभ्यामगम्यः" इति। ब्रह्मा विष्णु महादेव प्रभृतिक महानुभावों के भी वाणी मन से अगम्य है। प्राप्त करने के अयोग्य है। "यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह" इति श्रुतेः।

अर्थात् जिस परमात्मा से यह मन वाणी के साथ–साथ परम तत्त्व का अप्राप्त करके निवृत्त हो जाता है । अर्थात् परमात्मा वाणी मन से ग्रहण करने के योग्य नहीं है । प्राकृत रूपादि के सहकार से पदार्थ ग्राहक चक्षुरादिक परमात्मा का ग्राहक नहीं होता है। जब विधिभव प्रमुख देव भी मनोद्वारा परमात्मा को प्राप्त नही कर सकते है तब तदीतर व्यक्तियों की तो कथा ही क्या । अर्थात् इतर व्यक्तिों के वाणी मन से तो सर्वथा अप्राप्य है। इस तरहसर्वनियामक सर्वान्तर्यामी सर्वशेषी चेतनाचेतन शरीरक जगज्ज न्मादि कारणीभूत हेयप्रत्यनीक अनन्त कल्याण गुणक सकल वेद प्रतिपादित सर्वेश्वर श्री सीतानाथ सकल लोकाधिपति ही परमेश्वर हैं यह सिद्ध होता है ।

इस प्रकार विगत प्रकरण से आचार्य श्री ने परमतत्त्व का निरूपण किया । तथा उससे पूर्व जड चेतन प्रकृति जीव का भी यथा साध्य निरूपण किया गया । इस तरह 'किं तत्त्वम्' ऐसा जो प्रथम प्रश्न ज. गु. श्री सुरसुरानन्दाचार्य जी का था उसका समाधान किया गया इति ।।१८।।

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामेश्वरानन्दाचार्यजी

प्रणीत प्रकाश

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐